श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

आत्मधर्म

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३६ : अंक ४ [४२४] अक्टूबर, १९८०

आत्मधर्म [४२४]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक : **अखिल बंसल**

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन, जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ दशधर्म-वन्दना
२ आत्मा में अवश्य रुचेगा
३ संपादकीय : जिनवरस्य नयचक्रम्
४ भाषा व एषणा समिति
[नियमसार प्रवचन]
५ वे परमार्थवादी नहीं हैं
[समयसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ सोनगढ़ समाचार

छपते-छपते

बम्बई के उपनगर कांदीवली में श्री महावीर दिगम्बर जिनमंदिर तथा नंदीश्वरद्वीप बावन जिनालय का शिलान्यास-समारोह दिनांक १९-१०-८० को पूज्य श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में सेठ भोगीलाल रायचंद तुरखिया तथा रम्भाबेन पोपटलाल बोरा परिवार द्वारा संपन्न होना था। परंतु अस्वस्थता के कारण पूज्य स्वामीजी नहीं पधार सके। अत: सोनगढ़ जाकर पूज्य स्वामीजी के कर-कमलों द्वारा ईंटों पर स्वस्तिक लिखाकर उक्त विधि संपन्न कराई गयी।

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३६ [४२४] अंक : ४

दशधर्म-वंदना

जो क्रोध-मद-माया अपावन, लोभरूप विभाव हैं।
उनके अभाव स्वभावमय, उत्तमक्षमादि स्वभाव हैं॥
उत्तमक्षमादि स्वभाव ही, इस आत्मा के धर्म हैं।
है सत्य शाश्वत ज्ञानमय, निजधर्म शेष अधर्म हैं॥

निज आत्मा में रमण संयम, रमण ही तप-त्याग है।
निज रमण आकिंचन्य है, निज रमण परिग्रह-त्याग है॥
निज रमणता ब्रह्मचर्य है, निज रमणता 'दशधर्म' है।
निज जानना पहिचानना, रमना धरम का मर्म है॥

अरहंत हैं दशधर्म-धारक, धर्म-धारक सिद्ध हैं।
आचार्य हैं, उवझाय हैं, मुनिराज सर्व प्रसिद्ध हैं॥
जो आत्मा को जानते, पहिचानते करते रमण।
वे धर्म-धारक, धर्म-धन हैं, उन्हें हम करते नमन॥

आत्मा में अवश्य रुचेगा

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनंद भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे—ऐसा नहीं है; परंतु एक आत्मा में अवश्य रुचे—ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।

['बहिनश्री के वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, दिनांक ८-८-८०]

थोड़ा प्रेम से सुनने योग्य है। बहिन के वचन आनंद के अनुभव में से निकले हैं। यह पहला बोल है। इसमें कहा है कि तुझे कहीं न रुचता हो तो—यदि किसी भी परपदार्थ में, पुण्य-पाप के भाव में, इज्जत, कीर्ति, पैसा आदि में न रुचता हो तो अपने उपयोग को पलट दे।

यदि अंतरस्वभाव से बाह्य—किसी भी वस्तु पर उपयोग जाएगा तो राग ही उत्पन्न होगा। अत: कहीं न रुचे तो उपयोग पलट। जिस उपयोग में आत्मा पकड़ में न आवे तो समझना कि वह उपयोग स्थूल है। अत: यदि तुझे आत्मा पकड़ना हो तो उपयोग को पलट दे। एक ओर भगवान आत्मा है और दूसरी ओर संपूर्ण लोकालोक है। यदि पंच परमेष्ठी की ओर भी रुचि और राग होगा तो उपयोग अपनी ओर नहीं पलटेगा।

भगवान आत्मा सच्चिदानंद-स्वरूप है। उसकी ओर उपयोग पलट दे और आत्मा की रुचि कर। यही करनेयोग्य है। छहढाला में आता है कि :—

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोड़ि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्यावो॥

यही एक बात करनेयोग्य है। लाख बात की बात, करोड़ बात की बात यह है कि 'मैं आत्मा हूँ और यह राग है'—ऐसा विकल्प भी छोड़ दे और आत्मा की रुचि करके अंतर में प्रवेश कर।

यह मूल बात है। बाकी तो अनंत बार ग्यारह अंग और नौ पूर्व की धारणा की है, पर जो रुचि अंतर्मुख होनी चाहिए थी, वह नहीं हुई। इसलिए यहाँ कहते हैं कि सब जगह से रुचि छोड़कर एक आत्मा में रुचि लगा दे। दया, दान और व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प भी

छोड़ दे, क्योंकि ये सब अनात्मा हैं। आत्मा में उपयोग लगा दे। आत्मा में अच्छा लगेगा—ऐसा आत्मा है।

असंख्यातप्रदेशी आत्मा में सर्वांग आनंद भरा है—इसकारण वहाँ रुचेगा, अतः वहाँ रुचि लगा दे। भाषा तो सादी है, पर भाव गंभीर है। आत्मा के सिवा तुझे कहीं अच्छा न लगे तो आत्मा में रुचि लगा दे। क्योंकि आत्मा में रुचे-ऐसा है।

कर्म के संग से, पुण्य-पाप के भाव से भी अतीन्द्रिय आनंद का कंद प्रभु भिन्न है। इसलिए वहाँ अवश्य रुचेगा, अच्छा लगेगा। अतः आत्मा की रुचि कर।

अनंतबार नवमीं ग्रैवेयक गया। शुक्ल लेश्या बिना नवमीं ग्रैवेयक जाता नहीं है। चमड़ा उतारकर नमक छिड़का तो भी क्रोध नहीं किया—इसप्रकार भी बाह्य की क्षमा रखी; किंतु अंतर में आत्मा आनंदकंद है, उसकी रुचि नहीं की।

शब्दों में गंभीरता है। तुझे कहीं न रुचे तो आत्मा में रुचि कर। पुण्य-पाप के भाव में दुःख भरा है और आत्मा में आनंद भरा है। इसकारण वहाँ अवश्य रुचेगा।

जगत में कोई भी वस्तु रुचिकर नहीं है, पुण्य-पाप के भाव भी रुचिकर नहीं हैं, एकमात्र आत्मा ही रुचिकर है। एक आत्मा के आश्रय से ही वीतरागता प्रगट होती है। आत्मा सिवाय जगत में कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसके आश्रय से राग का अभाव होता हो।

यह बात जन्म-मरण का अभाव करनेवाली बात है। जब आत्मा की दृष्टि एवं रुचि करेगा तब भव और भव के भाव का अभाव होगा। अतः आत्मा में रुचि लगाओ, पर से लक्ष्य हटाकर एक आत्मा ही में उपयोग लगा दो।

निश्चय और व्यवहार

[गतांक से आगे]

यद्यपि निश्चय और व्यवहार का स्वरूप परस्पर विरोध लिए-सा है तथापि निश्चयरूप अभेद को भेद करके तथा असंयोगी को संयोग द्वारा प्रतिपादन करनेवाला व्यवहार जगत को निश्चय का विरोधी-सा नहीं लगता, क्योंकि वह निश्चय का प्रतिपादन करता है न। किंतु जब निश्चय अपने ही प्रतिपादक व्यवहार का निर्दयता से निषेध करता है तो जगत को खटकता है, क्योंकि व्यवहार का निश्चय-प्रतिपादकत्व और अभूतार्थत्व-एक साथ दोनों—यह जगत के गले आसानी से नहीं उतरता।

जब व्यवहार निश्चय अर्थात् भूतार्थ का प्रतिपादक है तो फिर स्वयं अभूतार्थ कैसे हो सकता है? यदि स्वयं अभूतार्थ है तो वह भूतार्थ (निश्चय) का प्रतिपादन कैसे कर सकता है? अर्थात् अभूतार्थ व्यवहार द्वारा प्रतिपादित निश्चय भूतार्थ कैसे हो सकता है?

दूसरे जब व्यवहार निश्चय का सत्य स्वरूप प्रतिपादित करता है तो फिर निश्चय उसका निषेध क्यों करता है? अपने प्रतिपादक का निषेध करना कहाँ तक उचित है? निश्चय के प्रतिपादन के लिए पहले व्यवहार को स्थापित करें और अपना काम हो जाने पर उसे असत्यार्थ कहकर निषेध कर दें—यह कुछ ठीक नहीं लगता। यदि वह असत्यार्थ है तो उसकी स्थापना क्यों और यदि सत्यार्थ है तो फिर उसका निषेध क्यों?

यह कुछ प्रश्न हैं, शंकाऐं हैं; जिनका उत्तर जगत चाहता है। जब तक ये प्रश्न अनुत्तरित रहेंगे, इनका समुचित समाधान जगत को प्राप्त नहीं होगा, तब तक गुत्थी सुलझनेवाली नहीं है।

इन प्रश्नों का समुचित उत्तर का अभाव भी निश्चय-व्यवहार संबंधी वर्तमान द्वन्द का

एक कारण है। इसलिए यहाँ इस विषय को विस्तार से सोदाहरण स्पष्ट करने का प्रयास किया जाना अपेक्षित है।

बादाम के पेड़ को भी बादाम कहते हैं, बादाम की मींगी भी बादाम कही जाती है, तथा छिलके सहित मींगी को तो बादाम कहा ही जाता है।

इसमें जो बादाम हमारे लिए उपयोगी है, वह तो वस्तुतः मींगी ही है। हमारी दृष्टि में तो वही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हमारा प्रयोजन तो उससे ही सधता है। बादाम का छिलका, बादाम का पेड़ हमारे लिए साक्षात् किसी काम के नहीं। बादाम की मींगी प्रयोजनभूत होने से हमारे लिए भूतार्थ है और छिलका-पेड़ अप्रयोजनभूत होने से अर्थात् साक्षात् प्रयोजनभूत न होने से अभूतार्थ है।

उसीप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति के लिए शुद्धात्मा का अनुभव करना हमारा मूल प्रयोजन है, अतः शुद्धात्मा हमारे लिए प्रयोजनभूत हुआ। इसीलिए शुद्धात्मा को विषय करनेवाला निश्चयनय भूतार्थ है और संयोग व संयोगीभावादि के अनुभव से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का प्रयोजन सिद्ध न होने से वे अप्रयोजनभूत ठहरे। इसीकारण उन्हें विषय बनानेवाला व्यवहारनय की अभूतार्थ कहा गया है।

'भूतार्थ को निश्चय और अभूतार्थ को व्यवहार कहते हैं'—इसके अनुसार मींगी निश्चयबादाम हुई तथा छिलका और पेड़ व्यवहारबादाम कहलाये।

इसी बात को यदि और अधिक स्पष्ट करें तो कथन इसप्रकार होगा। निश्चयनय से मींगी को बादाम कहते हैं और व्यवहारनय से पेड़ या छिलके को भी बादाम कहा जाता है, क्योंकि पेड़ या छिलका मींगी के सहचारी हैं।

यदि उनका मींगी से किसी भी प्रकार का संबंध न हो तो फिर वे व्यवहार से भी बादाम नहीं कहे जा सकते थे। क्या कोई आम के पेड़ और छिलकों को भी बादाम कहते देखा जाता है ?

इसीप्रकार निश्चयनय के विषयभूत शुद्धात्मा को निश्चयजीव और व्यवहारनय के विषयभूत शरीरादि के संयोग में रहनेवाले जीव-मनुष्यादि को व्यवहारजीव कहा जाता है। यदि आत्मा का शरीरादि से संयोगादि संबंध भी न हो तो उन्हें कोई व्यवहार से भी जीव नहीं कहेगा। क्या कोई मिट्टी की मूर्ति को भी जीव कहते देखा जाता है ?

'भूतं अर्थं प्रद्योतयति इति भूतार्थः, अभूतं अर्थं प्रद्योतयति अभूतार्थः'

भूत अर्थात् प्रयोजनभूत अर्थ को बतावे वह भूतार्थ और अभूत अर्थात् अप्रयोजनभूत अर्थ को बतावे वह अभूतार्थ। भूतार्थ का अर्थ प्रयोजनभूत किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है, क्योंकि अर्थ शब्द का अर्थ प्रयोजन भी होता है।

भूत+अर्थ इनके स्थान परिवर्तन से अर्थ+भूत=अर्थभूत हुआ। अर्थ माने प्रयोजन होता है, अतः अर्थभूत माने प्रयोजनभूत सहज हो जाता है।

जिसप्रकार भूत और अभूत की उक्त व्युत्पत्ति के अनुसार यहाँ बादाम की मींगी हमारे लिए प्रयोजनभूत पदार्थ है, क्योंकि वह हमारे खाने के काम आती है, पर छिलका और पेड़ अप्रयोजनभूत अर्थात् साक्षात् प्रयोजनभूत नहीं हैं, क्योंकि वे हमारे खाने के काम नहीं आते; किंतु सर्वथा अप्रयोजनभूत भी नहीं हैं, क्योंकि बादाम की मींगी की प्राप्ति के साधन हैं, अतः परंपरा से प्रयोजनभूत भी हैं।

यही कारण है कि परंपरा की अपेक्षा उसे कथंचित् भूतार्थ भी कहा जाता है, किंतु साक्षात् प्रयोजनभूत न होने से अध्यात्म में उसे प्रायः अप्रयोजनभूत ही कहा जाता है।

उसीप्रकार यद्यपि शुद्धात्मा हमारे लिए पूर्णतः प्रयोजनभूत है और अशुद्धात्मा या संयोगी-आत्मा अप्रयोजनभूत है; तथापि संसारी जीव की पहिचान का प्रयोजन सिद्ध करने के कारण अशुद्धात्मा या संयोगी-आत्मा भी कथंचित् प्रयोजनभूत है। फिर भी शुद्धात्मा की प्राप्ति का कारण न होने से अध्यात्म में उसे अप्रयोजनभूत ही कहा जाता है।

यदि बिना पेड़ या छिलके के जगत में मींगी की प्राप्ति संभव होती तो पेड़ और छिलके को व्यवहार से भी बादाम नहीं कहा जाता। पेड़ और छिलके को व्यवहार से बादाम कहे जाने के कारण यदि वैद्यजी के यह बताए जाने पर कि ताकत के लिए बादाम का हलवा खाना चाहिए, कोई छिलके या पेड़ का हलवा खाने की बात सोचे तो मूर्ख ही माना जाएगा। जगत में ऐसी मूर्खता कोई न करे, इसलिए व्यवहार के कथन के प्रति सावधान करना भी आवश्यक है, उसका निषेध करना भी आवश्यक है।

उसीप्रकार व्यवहार के बिना निश्चय का प्रतिपादन संभव होता तो व्यवहार को कथंचित् भूतार्थ भी नहीं कहा जाता, उसे जिनवाणी में स्थान भी प्राप्त नहीं होता; तथा यदि शरीरादि के संयोगवाले जीवों का कथन किये बिना ही इस अनादिकालीन अज्ञानी को आत्मा

समझाया जा सकता होता तो फिर असमानजातीय पर्यायवाले जीव को जीव कहते ही नहीं।

शरीरादि संयोगवाले संसारी जीव को भी व्यवहार से जीव कहे जाने के कारण सद्गुरु के यह कहने पर कि यदि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करना है तो आत्मा का अनुभव करो—कोई रागी-द्वेषी मनुष्यादिरूप आत्मा का अनुभव करने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति मानने लगे तो मूर्ख ही माना जाएगा। तथा जगत में कोई ऐसी मूर्खता न करे—इसके लिए व्यवहार कथन को अभूतार्थ कहकर उसका निषेध भी आवश्यक है।

यह कारण रहा है कि निश्चयनय व्यवहारनय का निषेधक है, उसे अभूतार्थ कहके उसका निषेध करता है।

समयसार की १४वीं गाथा की टीका में आचार्य अमृतचंद्रजी ने पाँच उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि पर्यायस्वभावादि के समीप जाकर देखने पर व्यवहारनय के विषयभूत बद्धस्पृष्टादि भाव भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं; पर निश्चयनय के विषयभूत द्रव्यस्वभाव के समीप जाकर देखने पर वे निश्चयनय से अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं।

बादाम की मींगी जब अकेली होती है तो सवा-सौ रुपया किलो बिकती है और जब छिलके भी साथ होते हैं, तो वह पच्चीस-तीस रुपए किलो में भी मुश्किल से बिकती है। इसप्रकार छिलके की संगति में उसकी कीमत घट जाती है, और एकाकीपने में बढ़ जाती है। तथा छिलका मींगी के साथ रहने पर पच्चीस-तीस रुपया किलो बिक जाता है, पर यदि वह अकेला हो तो कोई रुपया किलो लेने को भी तैयार नहीं होता। इसप्रकार हम देखते हैं कि छिलके की कीमत मींगी के साथ रहने में ही है, अकेले में नहीं।

उसीप्रकार व्यवहार की कीमत भी निश्चय के प्रतिपादकत्व में ही है, निश्चयपूर्वक अर्थात् निश्चय के साथ होने में ही है, अकेले में नहीं। निश्चय का साधक—प्रतिपादक होने से ही उसे जिनवाणी में स्थान प्राप्त है। किंतु निश्चय की कीमत व्यवहार की संगति में घट जाती है और अकेले में बढ़ जाती है-यही कारण है कि निश्चय व्यवहार का निषेध करता है, निषेधक है।

यहाँ एक बात यह भी जान लेने योग्य है कि बादाम का छिलका यदि मींगी के संयोग में पच्चीस-तीस रुपया किलो बिक जाता है, तो वह कीमत उसे कुछ मुफ्त में नहीं मिल गई है, उसने उसकी पूरी-पूरी कीमत चुकाई है। सर्दी, गर्मी, बरसात सब-कुछ अपने माथे पर झेली है,

और भीतर मींगी को पूर्ण सुरक्षित रखा है, उसे आँच तक नहीं आने दी है। सारी विपत्तियाँ अपने माथे पर झेलकर मींगी को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की है। अपना कर्तव्य पूरी तरह निभाया है। यहाँ तक कि जान की बाजी लगाकर मींगी की सुरक्षा की है। छिलके की प्रतिज्ञा है कि जब तक वह साबुत है तब तक मींगी का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता, खा नहीं सकता; खाना-बिगाड़ना तो बहुत दूर, उसे कोई छू भी नहीं सकता। यदि कोई चोट करेगा तो छिलका पहले अपने माथे पर झेलता है; चाहे स्वयं टूट जावे, फूट जावे; पर जब तक वह अटूट है-अफूट है, समझिये मींगी सुरक्षित है।

इतनी कीमत चुकाने पर उसे कीमत मिली है, उसे आप मुफ्त की क्यों समझते हैं ?

उसीप्रकार व्यवहार ने अपनी पूरी शक्ति से निश्चय का प्रतिपादन किया है, भले ही निश्चय उसका निर्दयतापूर्वक निषेध करता रहा, पर उसने अपने निश्चयप्रतिपादकत्व स्वभाव को नहीं छोड़ा, जब कहीं जाकर उसे जिनवाणी में स्थान प्राप्त हुआ है।

ऐसी बात सुनकर कुछ लोग कहते हैं कि यदि यह बात है, व्यवहार इतना वफादार है, तो फिर उसका निषेध क्यों ?

भाई ! उसकी सार्थकता उसके निषेध में ही है, क्योंकि यदि उसका निषेध न हो तो वह अपने काम में भी सफल नहीं हो सकता है।

क्यों, कैसे ?

जैसे कि हमारी दृष्टि से बादाम के पेड़ का लगाना, उसे सींचना, बड़ा करना आदि संपूर्ण मेहनत बादाम की मींगी अर्थात् निश्चयबादाम के सेवन के लिए ही तो है; पर यदि इस लोभ से कि जब छिलके ने मींगी की सुरक्षा के लिए इतनी कुर्बानी दी, इतनी वफादारी निभाई है, तो फिर उसे तोड़े क्यों, फोड़े क्यों ?—ऐसा सोचकर उसे तोड़े नहीं तो क्या बादाम का सेवन-हलुवा बनाकर खाना-संभव होगा ?

नहीं, कदापि नहीं।

तो फिर जो कुछ भी हो, संपूर्ण मेहनत की सार्थकता इसमें ही है कि परिपक्वावस्था में पहुँच जाने पर छिलके को तोड़ दिया जाये, फोड़ दिया जाये; तथी जाकर बादाम का हलुवा खाया जा सकता है।

हाँ, यह बात अवश्य है कि उसे पूर्णतः पक जाने पर ही फोड़ा जाए, यदि कच्ची या

अधपकी फोड़ दी तो वह लाभ प्राप्त नहीं होगा जो हम चाहते हैं। यह भी हो सकता है कि लाभ के स्थान पर हानि भी हो जावे।

इसीप्रकार जिनवाणी और उसमें बताये मार्ग पर चलकर सुख-शांति प्राप्त करने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि बादाम के छिलके को तोड़ने के समान व्यवहार का भी निषेध करें, अन्यथा व्यवहार द्वारा प्रतिपादित निश्चय के विषयभूत अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकेगी अर्थात् आत्मा का अनुभव नहीं हो सकेगा, हम व्यवहार में ही अटक कर रहे जावेंगे। यदि व्यवहार के उपकार याद कर-करके हम उसका निषेध न कर पाये तो विकल्पों में ही उलझे रहेंगे, विकल्पातीत नहीं हो सकेंगे।

हाँ, यह बात अवश्य है कि व्यवहार का निषेध व्यवहारातीत होने के लिए परिपक्वावस्था में ही होता है, पहले नहीं। यदि पहले करने जावेंगे तो न इधर के रहेंगे, न उधर के। परिपक्वावस्था माने वृद्धावस्था नहीं, अपितु व्यवहार द्वारा परिपूर्ण प्रतिपादन होने के बाद अर्थात् निश्चय की प्राप्ति होना-लेना चाहिए।

जैसे नाव में बैठे बिना नदी पार होंगे नहीं और नाव में बैठे-बैठे नदी पार होंगे नहीं। नाव में नहीं बैठेंगे तो रहेंगे इस पार और नाव में बैठे रहेंगे तो रहेंगे मंझधार। नदी पार करने के लिए नाव में बैठना भी होगा और नाव को छोड़ना भी होगा अर्थात् नाव में से उतरना भी होगा।

उसीप्रकार व्यवहार के बिना निश्चय समझा नहीं जा सकता और व्यवहार को छोड़े बिना निश्चय पाया नहीं जा सकता। निश्चय को समझने के लिए व्यवहार को अपनाना होगा और निश्चय को पाने के लिए व्यवहार को छोड़ना भी होगा।

किंतु ध्यान रहे कहीं ऐसा न हो कि नाव के उस पार पहुँचे बिना ही आप नाव को छोड़ दें, नाव से उतर जावें—यदि ऐसा हुआ तो समझिये नदी की धार में बहकर समुद्र में पहुँच जावेंगे।

उसीप्रकार यदि व्यवहार द्वारा वस्तु का पूर्ण निर्णय किये बिना ही, निश्चय के किनारे पर पहुँचे बिना ही यदि आपने उसे छोड़ दिया तो निश्चय की प्राप्ति तो होगी नहीं, व्यवहार से भी भ्रष्ट हो जावेंगे और संसार-समुद्र में डूबने के अतिरिक्त कोई राह न रहेगी।

अत: व्यवहार कब छोड़ना? इसका ध्यान रखना बहुत जरूरी है। तथा कहीं हम

व्यवहार को अस्थान में ही न छोड़ दें—इस भय से, 'वह छोड़ने योग्य है'—यह समझने के लिए तैयार ही नहीं होना भी कम मूर्खता नहीं है, क्योंकि व्यवहार का निषेध ही है स्वभाव जिसका ऐसे निश्चय का स्वरूप न समझ पाने के कारण उसके विषयभूत अर्थ की प्राप्ति कैसे होगी ?

जिनवाणी में जो निश्चय-व्यवहार में प्रतिपाद्य-प्रतिपादक और व्यवहार-निश्चय में निषेध्य-निषेधक संबंध बताया गया है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण और मार्मिक है, उसमें कोई विरोधाभास नहीं है। अत: उसके मर्म को गहराई से समझने का यत्न किया जाना चाहिए।

(क्रमश:)

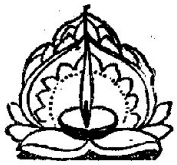

न खलु समयसारादुत्तरं किंचिदस्ति

समयसार जिनागम का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथराज है। इससे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है। यह जगत का अक्षयचक्षु है। आचार्य अमृतचंद्र ने समयसार कलश २४४-२४५ में समयसार को जगत का अक्षयचक्षु एवं सर्वश्रेष्ठ ग्रंथराज कहा है। समयसार का अर्थ शुद्धात्मा और शुद्धात्मा का निरूपक यह शास्त्र—दोनों ही लेना चाहिए, क्योंकि एक परब्रह्म है और दूसरा शब्दब्रह्म है। दोनों में वाच्य-वाचक संबंध है। शुद्धात्मा वाच्य है और ग्रंथाधिराज समयसार उसका वाचक है।

जिन्हें वाच्यरूप शुद्धात्मा की प्राप्ति करना हो, उन्हें वाचकरूप समयसार का अध्ययन-मनन अवश्य करना चाहिए। —संपादक

भाषा व एषणा समिति

परमपूज्य दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ६२वीं एवं ६३वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोकों पर हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथाऐं इसप्रकार हैं:—

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
परिचत्ता सपरहिदं भासासमिदी वदंतस्स॥६२॥
कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च।
दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी॥६३॥

पैशून्य (चुगली), हास्य, कर्कशभाषा, परनिंदा और आत्मप्रशंसारूप वचन परित्यागी को-जो स्वपरहितरूप वचन बोलता है उसे-भाषा समिति होती है।

पर द्वारा दिया गया, कृत-कारित-अनुमोदना रहित, प्रासुक और प्रशस्त भोजन करनेरूप जो सम्यक् आहारग्रहण वह एषणा समिति है।

वास्तव में आत्मा भाषा बोल सकता नहीं, किंतु भाषा बोली जाती हो उससमय शुभराग कैसा होता है तथा अंदर स्वरूप-रमणता कैसी होती है, उसकी यहाँ पहचान कराई है। मुनिराज वचन बोलते हैं-यह व्यवहार का कथन है। बोलने की क्रिया जड़ की है, वास्तव में आत्मा नहीं बोलता।

प्रश्न - द्रव्यानुयोग की अपेक्षा से तो आत्मा नहीं बोल सकता, किंतु चरणानुयोग की अपेक्षा से तो बोल सकता है न?

उत्तर - यह बात कहाँ से निकाल डाली भाई? यहाँ तो भाषा निकलती हो उससमय राग कैसा होता है, वह बता रहे हैं। व्यवहार से आत्मा बोल सकता हो और निश्चय से नहीं बोल सकता हो-ऐसा है ही नहीं, क्योंकि बोलना तो आत्मा के स्वभाव में ही नहीं है।

पैशून्य - चुगलखोर मनुष्य राजा को किसी एक पुरुष, किसी एक कुटुंब अथवा किसी एक ग्राम के लिए महाविपत्ति के कारणभूत वचनों को कहे, वह चुगली है। धर्मात्मा जीव ऐसी बात को गुप्त रखता है, क्योंकि अनादि संसार में परिभ्रमण करते जीवों के अनेक प्रकार के परिणाम होते हैं, वे मात्र ज्ञान के ज्ञेय हैं। धर्मात्मा ऐसे जीव के दोष के प्रसंग में शांति रखता है।

हास्य - होली आदि अनेक प्रसंगों में किसी का विकृत रूप देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होनेवाला, किंचित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभकर्म का कारण, पुरुष के मुख के विकार के साथ संबंध वाला हास्यकर्म है। मुनि के छठे गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव हुआ है, वीतरागी परिणति प्रकट हुई है, उनको ऐसे हास्यादि के अशुभभाव नहीं होते। वे ऐसे हास्यवचन कहने का विकल्प नहीं करते-ऐसा शुभभाव वह व्यवहार है। साथ में अकषाय वीतरागभावरूप परिणति प्रकट हुई है, वह निश्चय भाषासमिति है। मुनिराज ठट्ठा, मस्करी, मजाक नहीं करते।

कर्कश वचन - कान में सुनते ही अति अप्रिय लगे वह कर्कश वचन है। स्त्रियाँ झगड़ा करें तब वृश्चिकदंश जैसे ताना मारें वह सज्जनता नहीं कही जाती। मुनिराज दूसरों को अप्रीति-उत्पादक वचन नहीं बोलते—ऐसा भाव नहीं करते।

परनिन्दा - अन्य के विद्यमान दोष भी मुनि प्रकट नहीं करते, तब अविद्यमान दोषों की तो बात ही कहाँ रही ? मुनि भाषा द्वारा किसी के दोष प्रकट नहीं करते, इसप्रकार का शुभराग उनके होता है, किंतु अशुभराग नहीं होता।

आत्मप्रशंसा - अपने में अविद्यमान गुणों की तो बात ही नहीं, मुनिराज तो अपने में विद्यमान गुणों की भी प्रशंसा नहीं करते।

मुनि जड़शब्द बोलें, यह निमित्त से कथन है। वास्तव में तो मुनि ऐसा भाव नहीं करते—ऐसा यहाँ कहना है। उपर्युक्त सभी अप्रशस्त वचन त्यागकर स्व तथा अन्य जीव को शुभ एवं शुद्धपरिणति में निमित्तभूत वचन वह भाषासमिति है। सामनेवाले जीव को पुण्य-पापरहित ध्रुवस्वभाव प्रकटे ऐसे वचन मुनिराज बोलते हैं। भाषासमिति को शुद्ध का निमित्त कहा, किंतु वह तभी है, जब सामनेवाला जीव शुद्धभाव प्रकट करे। यदि सामनेवाला जीव शुभभाव करे तो वे ही वचन शुभ के निमित्त कहे जावेंगे। यह व्यवहारसमिति है।

श्री गुणभद्राचार्यदेवकृत आत्मानुशासन में भी २२६वें श्लोक में इसप्रकार कहा है :—

समधिगत समस्ताः सर्वसावद्यदूराः,
स्वहितनिहितचित्ताः शांतसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्पमुक्ताः,
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः॥२२६॥

धर्मात्मा जीव ने वास्तविक वस्तु का स्वरूप जान लिया है। द्रव्य, गुण, पर्याय, राग, विकार, स्वभाव, विभाव जैसा है, वैसा पृथक्-पृथक् सब जान लिया है। वह अपने ज्ञान से स्वहित में एकाग्र हुआ है, वह धर्मात्मा मुनि किसी के काम को अपने माथे नहीं लेता—कषाय की बाह्य प्रवृत्ति अपने माथे नहीं लेता। 'अमुक सेठ के मकान-दुकान के उद्घाटन में उपस्थित होना'—ऐसे काम छठे-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले मुनिराज अपने जिम्मे लेंगे क्या? अंतर्मुहूर्त में हजारों चार विकल्प उठे कि शास्त्र लिखूं और फिर क्षण में स्वरूप में ठहर जायें—ऐसे मुनि अपने माथे कोई काम नहीं लेते। पुनः कैसे हैं मुनि? जिनकी वाणी सफल है। सामनेवाले जीव का कल्याण हो ऐसा ही वाणी का योग होता है। मुनि यद्वा-तद्वा वचन नहीं बोलते। ऐसे विमुक्त जीव मोक्ष के भाजन क्यों न हों? अवश्य हों।

परब्रह्मण्यनुष्ठाननिरतानां मनीषिणाम्।
अन्तैरप्यलं जल्पैः बहिर्ज्जल्पैश्च किं पुनः॥८५॥

परब्रह्म अर्थात् कारणपरमात्मा में लीन होनेवाले मुनि को अंदर में शुभ विकल्परूप भाव उठे उससे भी बस होओ। बाहर में भाषा बोलने की तो बात ही क्या?

इसप्रकार भाषासमिति का स्वरूप कहा।

निर्दोष आहार-पानी लेने की वृत्ति वह एषणासमिति है। मुनि अपने लिए बनाया हुआ अन्न-पानी ग्रहण नहीं करते। मन-वचन-काय तथा कृत-कारित-अनुमोदन, इन नवकोटि से अशुद्ध आहारादि मुनिराज नहीं स्वीकार करते। वह तो प्रासुक अर्थात् अचित्त, जीवरहित भोजन और जल भी उष्ण लेते हैं। प्रशस्त अर्थात् अच्छा, शास्त्र में जिसकी प्रशंसा की गई हो, व्यवहार में जो प्रमादादि अथवा रोग का निमित्त न हो, ऐसे भोजन ग्रहण करने का शुभभाव वह व्यवहार एषणासमिति है। मुनि को अंदर निश्चयस्वभाव का भान है, सहज दशा से भ्रमण करते हुए आहार मिले उससमय खाने की क्रिया तो उसके अपने कारण से होती है, वह जो अंदर में विकल्प होता है, उसकी यहाँ बात है।

मन-वचन-काय में से प्रत्येक को कृत-कारित-अनुमोदना सहित गिनने पर उसके नौ भेद होते हैं। उनसे संयुक्त भोजन नवकोटि से विशुद्ध नहीं है—ऐसा शास्त्र में कहा है। तीव्र राग टूट जाने के कारण सचित्त आहार मुनिराज नहीं लेते—ऐसी उनकी सहजदशा है, वे आहार के लिए मौन होकर निकलते हैं। गृहस्थ प्रतिग्रह करे कि 'तिष्ठो, तिष्ठो, तिष्ठो, आहार-जल शुद्ध है'—ऐसा कहकर आहार ग्रहण करने की प्रार्थना करे, मुनि कृपा करें तो आहारदाता श्रावक अपने घर में ले जाकर उच्चस्थान पर उन्हें विराजमान करके, चरण धोकर पूजन करता है और प्रणाम करता है, पश्चात् मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक शुद्ध भिक्षा देता है। श्रद्धा आदि सात गुणों का धारक दाता प्रतिग्रह आदि नवधाभक्तिपूर्वक आहार देता है। मुनि आहार के लिए निकलें तब घंटे-दो घंटे का जो समय लगे उसमें भी हजारों बार छठा-सातवाँ गुणस्थान आ जाता है-इसका नाम भावलिंगी मुनि है।

श्रावक श्रद्धादि सात गुणोंवाला होता है। क्योंकि उसको बहुमान है कि नहीं, आहारदान की शक्ति है कि नहीं, उसको भक्ति है कि नहीं, वह नि:स्पृही है कि नहीं, इत्यादि तथा उसको सच्चा ज्ञान है कि नहीं, यह सब जानना चाहिए। यह सब गुण जिसमें हों, उसी के यहाँ मुनि भिक्षा लेते हैं। छठे गुणस्थान में वर्तते मुनि की दृष्टि राग के ऊपर नहीं, अपितु स्वभाव के ऊपर है। वे उपर्युक्त लक्षणवाले श्रावक के यहाँ ही आहार लेते हैं। वह श्रावक दयालु हो, क्रोधी न हो, शुद्ध-योग्य आचारवाला हो, मुख्यपने भानवाला (आत्मज्ञानी) होता है, अन्यथा व्यवहार आचारवाला तो होवे ही। ऐसी दशा दातार और पात्र की सहज होती है।

मुनिराज की सहजदशा है। जब वे आहार के लिए निकलें और मार्ग में कहीं रुदन सुनाई पड़े अथवा आग लगी दिखाई पड़े तो वे अंतर विचार में उतर जाते हैं कि 'अरे! मैं तो वीतराग मार्ग में चलनेवाला हूँ—शांतिजनक नित्यस्वभाव में रहनेवाला हूँ—वहाँ यह रुदन और अनित्यता कैसी?' ऐसा सोचकर तुरंत आहार-संबंधी विकल्प तोड़कर स्वरूप में ठहर जाते हैं। यह सहजस्वभाव है, इसमें हठ नहीं होता। इस तरह मुनि निर्दोष भोजन लेते हैं - वह भोजनसमिति है। इसप्रकार व्यवहारसमिति का क्रम है।

निश्चय से तो ऐसा है कि जीव को परमार्थ से आहार नहीं है। परमतपोधन तो अनाकुल रस के घूँट पीते हैं, उन्हें वास्तव में अशन नहीं है। छह प्रकार का अशन व्यवहार से संसारियों को ही होता है।

श्री प्रवचनसार की अवतरण गाथा लेकर कहा है कि—नोकर्म आहार आदि छह प्रकार का आहार है—वह अशुद्ध जीवों का विभावधर्मविषें व्यवहारनय का उदाहरण है।

मुनि को विकल्प उठता है, उसका वह ज्ञान करते हैं, आहार जीव नहीं लेता। छठे गुणस्थान में जो विकल्प उठा है, वह विभाव है। एषणासमिति का शुभराग है, वह पुण्यभाव है-विकार है-वह विभावधर्म है, स्वभावधर्म नहीं। स्वभावधर्म तो अंदर प्रकट हुई शांति है, किंतु उस भूमिका में विकल्प आये बिना रहता नहीं, तथापि मुनिराज उसे बंध का कारण जानते हैं।

श्री प्रवचनसार की २२७वीं गाथा द्वारा यहाँ निश्चयएषणा का उदाहरण—स्वरूप कहा है। मुनि को निर्दोष आहार लेने का भाव हो, वह विकल्प है-राग है-पुण्य है; धर्म नहीं है तथा धर्म में सहायक भी नहीं है।

यह प्रवचनसार की मूलगाथा है। जिसका आत्मा एषणारहित है अर्थात् जो अनशन स्वभावी आत्मा को जानता होने से स्वभाव से आहार की इच्छारहित है, उसको वह भी तप है। चिदानंदस्वभाव का भान करके आत्मस्वरूप में झूलते हुए मुनि ने प्रथम से ही निर्णय किया है कि आहार लेने का भाव ही मेरे स्वरूप में नहीं है। आहार का एक रजकण भी आत्मा ले सकता या छोड़ सकता नहीं, तथा आहार लेने की वृत्ति भी आत्मा के स्वभाव में नहीं है—ऐसा प्रथम से ही, आत्मा का सच्चा भान होते ही, मुनि ने निर्णय किया है। आहार का आना तो जड़ की पर्याय है, निर्दोष आहार लेने की वृत्ति शुभराग है। आहार आनेरूप जड़ की पर्याय के समय शुभवृत्ति होती है, अशुभ नहीं होती, उसे व्यवहारएषणा कहते हैं - वह धर्म का कारण नहीं है।

धर्म का कारण जो एषणा है, उसका स्वरूप अब कहते हैं। आत्मा ज्ञानानंदस्वरूप है, उसमें यह जड़ आहार तो है ही नहीं, आहारसंबंधी इच्छा का भी उसमें त्रिकाल अभाव है। एषणा अर्थात् निर्दोष आहार की इच्छा मेरे स्वरूप में नहीं है, इस इच्छा से रहित ही मेरा स्वभाव है-ऐसा निर्णय करना वह प्रथम धर्म है।

आत्मा अखंड चिदानंद ज्ञानमूर्ति है। उसका भान प्रथम होने के पश्चात् विशेष अंतरस्थिरता बढ़ने पर मुनिदशा होती है। 'मैं ज्ञानानंद चैतन्यमूर्ति आत्मा हूँ, मेरा आत्मा आहार और आहार की इच्छा रहित ही त्रिकाल है।' आहार, पुण्य-पाप अथवा व्यवहाररत्नत्रय रहित आत्मा का स्वभाव है—ऐसे अनशनस्वभावी आत्मा का जिसको भान हुआ है अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रकट हुआ है, उसको चिदानंद आत्मा एषणासमिति है—ऐसा भान वर्तता है,

उसको वही तप है। जिसका आत्मा अनशनस्वभावी आत्मा को परिपूर्णपने प्राप्त करने का कामी है, ऐसे सहजदशा में झूलते निर्ग्रंथ मुनियों को स्वरूप से जुदी ऐसी भिक्षा एषणादोष रहित होती है। अतः भगवान उन मुनियों को अनाहारी कहते हैं।

इस गाथा में तीन विशेषताएँ बतलाई हैं:—

(१) 'आहार-जल जड़ है, उसका ग्रहण त्याग मेरे स्वरूप में नहीं है; आहार-पानी रहित ही मेरा स्वभाव त्रिकाल है'—ऐसे अनशनस्वभावी आत्मा का जिसे भान है, उसे वही तप है।

(२) मुनि ज्ञानानंद आत्मा को—आहार तथा इच्छा, विकल्प, पुण्यादि की लागनी रहित आत्मा को—पूर्ण प्राप्त करने का पुरुषार्थ कर रहे हैं।

(३) मुनियों की अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणी, प्रत्याख्यानावरणी—इन तीन कषायरहित सहजदशा होती है, उस दशा में आहार का विकल्प उठता है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहार की इच्छा स्वरूप से भिन्न है ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और अंतरस्वरूप लीनता प्रकटी है, तथापि विकल्प उठा है, उसे तोड़कर स्वभाव में ठहरे हैं, इसलिए उन मुनिराज को एषणारहित कहते हैं। ऐसी भूमिका जिनके वर्तती है, उन्हें अनाहारी कहते हैं।

इसीप्रकार श्री गुणभद्राचार्य ने आत्मानुशासन के २२५वें श्लोक में कहा है:—

यमनियमनितान्तः शांतबाह्यांतररात्मा,
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकंपी।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं,
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥२२५॥

जिसने अध्यात्म के सार का निश्चय किया है। अध्यात्म का सार अर्थात् 'मैं ज्ञान-दर्शनस्वभावी हूँ, परमानंद की मूर्ति हूँ, शुभाशुभ रागरहित त्रिकाली आत्मा हूँ, शरीर-वाणी आदि पदार्थों की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं, आहार का ग्रहण-त्याग मेरे स्वभाव में है ही नहीं'—इसप्रकार जिसने सभी पहलुओं से प्रथम आत्मा का निर्णय किया है, वह जीव सम्यग्दृष्टि है। प्रथम ऐसे आत्मा का निर्णय करने के बाद स्वरूप में विशेष रमणता जिसने प्रकट की है, वह जीव अत्यंत यम-नियम सहित है, स्वरूपरमणतारूप चारित्रयुक्त है।

पुनः, जो बाहर से और अंदर से शांत हुआ है, जिसको समाधि परिणमी है, जिसको

सब जीवों के प्रति अनुकंपा है, जो शास्त्र की आज्ञानुसार हित-मित भोजी है, जिसने निद्रा का नाश किया है, वह आत्मलीन भावलिंगी मुनि क्लेशजाल का समूल नाश करता है।

आत्मा चिदानंदमूर्ति है, पुण्य-पाप विकार से रहित उसका स्वभाव है—ऐसे भानसहित जो मुनि स्वरूप में विशेष स्थिर हो गये हैं, उनके बाहर से कलुषता अथवा उद्धतपना नहीं होता तथा अंतर में अनंतानुबंधी आदि तीन कषायों का उनके अभाव है, विशेष शांति, विशेष आनंद, विशेष अनाकुल-स्वभाव प्रकट हुआ है, इसलिए वे मुनि बाहर से और अंदर से शांत हुए हैं-ऐसा कहा।

पुनश्च, छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते मुनि को मन-वाणी-देह से पार तथा पुण्य-पाप रहित अंतरंग शांतदशा-वीतरागी स्वरूपलीनता प्रकटी है, अत: उनके समाधि परिणामी है-ऐसा कहा। वे वीतरागी मुनि छठे गुणस्थान में आवें तब विकल्प उठे कि आहार ग्रहण करें। आहार भी भगवान वीतराग की आज्ञा प्रमाण-शास्त्रानुसार हित-मित ही लेते हैं।

छठे-सातवें गुणस्थान में हजारों बार झूलते मुनि के छठे गुणस्थान में अल्प निद्रा होती है। छठी भूमिका में किंचित् निद्रा आकर फिर तुरंत ही अंतर्मुहूर्त में सातवीं भूमिका में आते हैं। मुनिराज घंटे दो घंटे निद्रित हो जावें—ऐसा नहीं होता, कारण कि वे छठे गुणस्थान में थोड़े काल रहकर शीघ्र ही सातवें में आ जाते हैं। इसप्रकार स्वरूप में उग्र लीनता द्वारा जिनको गहरी निद्रा का नाश हुआ है, वे मुनिराज क्लेशजाल को समूल नाश करके वीतराग होकर परमशांतदशा को प्राप्त होते हैं।

पाँचवीं भूमिकावाले को भी अंशरूप में उपर्युक्त प्रमाण ही समझना। उसके भी 'मैं अखंड ज्ञायकद्रव्य हूँ, शरीर तथा आहार की क्रिया से मुझे हानि-लाभ नहीं है'—ऐसे अध्यात्म के सार का—निज शुद्धात्मा का यथार्थ निर्णय हुआ है। वह भी अपनी भूमिका प्रमाण दो कषायों का नाश करके तदनुसार यम-नियम सहित है। जीवनपर्यंत नियम लेने को यम कहते हैं। महाव्रत अथवा अणुव्रत जीवनपर्यंत के लिए होते हैं, अत: उन्हें यम कहते हैं। थोड़े काल तक धारण किया जाये उसे नियम कहते हैं। मुनिराज आहार के लिए जाते समय अभिग्रह करते हैं, वह थोड़े काल तक का होने से नियम कहा जाता है। आत्मा में जीवनभर के लिए राग छूटा, वह यम और थोड़ा राग छूटा, वह नियम कहलाता है। यथार्थ वस्तुस्थिति के भान—आत्मभान होने के बाद की यह बात है। आत्मभान होने से प्रथम कोई भी यम-नियम आदि सच्चे नहीं होते।

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं, ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम्।
तप्त्वा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी, प्राप्नोतीद्धां मुक्तिवारांगनां सः॥८६॥

आत्मज्ञानी मुनि को स्वभाव की विशेष लीनता के पुरुषार्थ से विशेष समाधिशांति प्रकट हुई है। सहजस्वरूप की रमणता में लीन हुए मुनि जब सातवीं भूमिका में विशेष नहीं ठहर पाते तब किंचित् विकल्प उठता है, और आहारादि लेने के प्रति लक्ष कुछ भटक जाता है। श्रद्धालु भक्त के हाथ की उंगलियों से देने में आया हुआ भोजन लेकर, पूर्ण प्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके, इसप्रकार सच्चे तप को तपकर सच्चे तपस्वी (भावलिंगी मुनिराज) देदीप्यमान—शोभायमान मुक्तिवारांगना को, मुक्तिरूपी आत्मा की पूर्णशुद्धपरिणति को प्राप्त करते हैं।

श्रद्धा, शक्ति, अलुब्धता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा—ये दाता के सात गुणसहित शुद्ध योग्य आचारवाले भक्त के हस्ताग्र से—हाथ की उँगलियों से—भक्तिपूर्वक देने में आया हुआ आहार मुनि लेते हैं। भक्त उपर्युक्त गुणयुक्त होना चाहिये। अभक्ति आदि प्रदर्शित करनेवाले के हाथ से मुनि आहार नहीं लेते। भक्तिपूर्वक दिया हुआ भोजन लेकर, आहार संबंधी विकल्प तोड़कर 'यह मेरा आत्मा पूर्णज्ञान का सूर्य है, मेरे स्वभाव में दया, दान, अथवा आहार का विकल्प नहीं है'—इसप्रकार पूर्णज्ञान स्वभावी आत्मा में एकाग्र होकर, पूर्णज्ञानप्रकाश में लीन होकर, ज्ञानस्वभाव में एकाग्रतारूप सच्चा तप तपकर, वे सच्चे मुनि मुक्तिरूपी स्त्री का वरण करते हैं।

यहाँ 'पूर्ण प्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके'—ऐसा कहा, वह केवलज्ञान की बात नहीं है। वह तो त्रिकाली पूर्ण ज्ञानस्वभाव से भरपूर है, उसकी बात है, उसका ध्यान—एकाग्रता करके मुक्ति को प्राप्त किया जाता है।

सम्यक् तप तपकर अर्थात् आत्मा का सच्चा ज्ञान करके अनशनादि के शुभविकल्प रहित स्वरूप में ठहर जाना, स्वरूप में प्रतपन-देदीप्यमान होना वह तप है। आत्मा के भान बिना अनशनादि का फल आत्मा के लाभ के लिए नहीं है, वह तो शरीर का शोषण करना मात्र है। अतः हे स्ववश मुनि! चिदानंद अनुभवस्वरूप आत्मा में एकाग्रता कर तो लाभ है, मात्र अनशनादि करने से—बाह्य शरीर सुखाने से तो लाभ है नहीं।

वीतरागी आत्मस्वभाव में एकाग्र होनेवाले को सम्यक् तपस्वी कहते हैं, वही

देदीप्यमान मुक्तिस्त्री को प्राप्त करता है। देदीप्यमान अर्थात् रूपवाली। लोग तो सुरूपवान स्त्री के कामी होते हैं, किंतु मुनिराज कहते हैं कि वास्तविक रूपवान अर्थात् देदीप्यमान तो मुक्तिस्त्री ही है—मुक्तदशा ही है। सच्चा तपस्वी मुक्तिरूपी शाश्वत् स्त्री को पाता है, शेष सभी तो स्वर्ग-नरक में भटकते ही रहते हैं।

प्रश्न - अनशन में आहार तो छोड़े न?

उत्तर - भाई! आहार को—पर-जड़ पदार्थ को छोड़े-त्यागे कौन? वास्तव में तो आत्मा राग भी छोड़ता नहीं, राग को छोड़ने से राग छूटता नहीं, परंतु रागरहित ज्ञानानंद वीतरागी आत्मस्वभाव का भान करके उसमें एकाग्र होने पर राग सहज ही छूट जाता है। स्वभाव में लीन होने पर राग टल जाता है, राग को टालना-छोड़ना पड़ता नहीं। वीतराग मार्ग के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ऐसा मार्ग-मोक्ष का मार्ग नहीं होता।

समयसार प्रवचन

वे परमार्थवादी नहीं हैं

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की उनतालीसवीं से तेंतालीसवीं गाथाओं पर हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अज्ञानी जीव की इस विपरीत मान्यता को जानकर यदि अपने में ऐसा अज्ञान भाव हो तो आत्मा का स्वरूप समझकर वह अज्ञान भाव दूर कर देना चाहिए। एक तो यह मनुष्य देह ही मिलना दुर्लभ है, और फिर उसमें ऐसी यथार्थ बात कान में पड़ना और भी कठिन है। यदि सत्य सुनने की भी रुचि न हो तो जीव का उद्धार कैसे होगा? अपने में सत्य समझने की योग्यता हो तो सत्य समझानेवाले निमित्त भी अवश्य मिल जाते हैं। यह जीव कैसी-कैसी विपरीत

मान्यताओं से संसार में घूम रहा है-इसका वर्णन आचार्यदेव ने इन गाथाओं में किया है।

जीव को अपने त्रिकाली ज्ञानानंद स्वभाव की खबर नहीं है, और भ्रम से राग-द्वेष आदि भावों को अथवा जड़कर्मों को आत्मा मान बैठा है। सत्यस्वरूप की खबर न होने से अनेक प्रकार की असत्य मान्यताओं में जीव भटक रहा है।

कोई अज्ञानी कहते हैं कि तीव्र-मंद अनुभव से भेदरूप होते हुए, दुरंत रागरूप रस से भरे हुए अध्यवसानों की संतति ही जीव है, क्योंकि उससे अन्य अलग कोई जीव दिखाई नहीं देता।

अज्ञानी कहता है कि आप भले ही आत्मा-आत्मा की रट लगाते रहो, किंतु हमें तो कभी तीव्र राग और कभी मंद राग की चलनेवाली परंपरा के अतिरिक्त कोई अन्य आत्मा दिखता ही नहीं है। हमें तो क्रोधादि कषायों के तीव्र-मंद प्रवाह का अंत करना कठिन मालूम पड़ता है; इसलिए आप जो राग से भिन्न आत्मा का वर्णन करते हैं, वह हमारी बुद्धि में नहीं बैठता।

अज्ञानी को राग का ही अनुभव है, अत: राग से परे निर्मल आत्मतत्त्व की उसे खबर नहीं है, इसलिए उसके चौरासी के भ्रमण की परंपरा चल रही है।

ज्ञानस्वभावी त्रिकाली ध्रुव आत्मतत्त्व पर दृष्टि न होने से अज्ञानी को पर-पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि होती है, इसलिए उसकी परिणति में राग की मंद-तीव्र धारा चलती रहती है। एक के बाद एक प्रवाह चलता रहता है। कभी आहार संज्ञा होती है, कभी मैथुन संज्ञा होती है, या कभी भक्ति-पूजन आदि के परिणाम भी हो जाते हैं; इसप्रकार एक के बाद एक विकारों की संतति चलती रहती है; किंतु राग से भिन्न आत्मा का अनुभव करके इस संतति को तोड़कर आत्मा का निर्मल चैतन्यस्वभाव प्रगट किया जा सकता है—ऐसा विश्वास अज्ञानी को नहीं होता।

अज्ञानी को स्थूल शरीर तो दिखाई देता है तथा वह बाधक भी लगता है, परंतु अंतरंग में राग-द्वेष आदि के परिणाम भी बाधक हैं—ऐसा नहीं लगता। यदि कोई उससे पूछे कि क्या अंतरंग में कोई बाधा देते हैं ? तो वह साफ इंकार कर देता है; क्योंकि राग-द्वेष की संतति ही जीव भासित होती है, उससे पृथक् भी कोई जीव है-ऐसा भासित नहीं होता; अत: जो स्वयं का स्वभाव लगे वह बाधक कैसे लगे ?

वास्तव में तो जो विकार का वेदन है, वह जड़ का ही वेदन है, क्योंकि इसमें चिदानंद-प्रभु ध्रुव-ज्ञायक का वेदन नहीं है।

कोई अज्ञानी कहते हैं कि नवीन और पुरानी अवस्था इत्यादि भाव से प्रवर्तमान नोकर्म ही जीव है, क्योंकि शरीर से अन्य कोई जीव दिखाई नहीं देता।

शरीर और वाणी की हलन-चलन और बोलने की जो अवस्था होती है, उस समय इनकी अवस्था भिन्न है और मेरी अवस्था भिन्न है—ऐसा अज्ञानी को भासित नहीं होता; परंतु शरीर की अवस्था अपने आप ही परिणमित होती है, वह पूर्ण स्वतंत्र है। यदि शरीर की अवस्था अपने अनुसार परिणमित होती है तो हम तो नहीं चाहते कि शरीर में बुखार आ जावे, रोग आ जावे, फिर भी रोग क्यों हो जाता है ? इच्छा तो शरीर को हृष्ट-पुष्ट करने की है, फिर भी सूखकर कांटा हो जाता है। इसीप्रकार वाणी का परिणमन भी बिल्कुल स्वतंत्र है। आत्मा मात्र अपने राग-द्वेष आदि भावों का कर्ता है। शरीर-मन-वाणी का बिल्कुल भी नहीं।

जो शरीर की क्रिया का कर्ता आत्मा को मानते हैं, वे शरीर और आत्मा को एक मानते हैं, क्योंकि कर्ता-कर्म संबंध एक द्रव्य में ही घटित होता है, दो द्रव्यों में नहीं। वास्तव में तो शरीर में आत्मा का न तो द्रव्य है, न गुण है, और न पर्याय है। शरीर तो माता के पेट में बनता है और फिर बाहर आकर भोजनादि द्वारा बढ़ता है। बालपन, जवानी और वृद्धावस्था धारण करके मरण को प्राप्त होता है। आत्मा का उस शरीर से संयोग छूट जाता है। आत्मा अन्य शरीर धारण करता है। इसप्रकार आत्मा तो नित्य ही शरीर से भिन्न रहता हुआ अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता।

कोई अज्ञानी जीव मानते हैं कि समस्त लोक को पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता हुआ कर्म का विपाक ही जीव है, क्योंकि शुभाशुभभाव से पृथक् कोई जीव दिखाई नहीं देता।

अज्ञानी जीव का पुण्य-पाप के अशांत भावों से तो परिचय है, परंतु इनसे पृथक् आत्मा के शांत स्वभाव से परिचय नहीं है; इसीलिए वह शुभाशुभ भावों के कर्ता, कर्म के विपाक को ही जीव मानता है।

इस बोल में अज्ञानी की कर्म के कर्तृत्व की मान्यता को बताया है अर्थात् कर्म ही जीव को शुभाशुभ भाव कराता है, इसलिए कर्म ही जीव है, अन्य नहीं। परंतु कर्म के विपाक से आत्मा, आत्मा के गुण तथा आत्मा की शांतपर्याय भिन्न ही हैं। शुभाशुभ भाव आत्मा के स्वभाव नहीं और आत्मा उन पर्यायों का कर्ता भी नहीं है। आत्मा तो स्थिर बिम्बस्वरूप शांतरस का कर्ता है।

जगत में वैभवादि की जो संपत्ति आदि मिलती है, वह सब पूर्वकृत पुण्य का परिणाम है, यह वर्तमान चतुराई या बुद्धि का फल नहीं है; वर्तमान में अनेक काले कारनामे करनेवाले भी अच्छी संपत्ति प्राप्त कर रहे हैं, अच्छी-अच्छी पदवियाँ प्राप्त कर रहे हैं; किंतु यह सब पूर्वकृत पुण्य का फल है। अभी जो कुकृत्य कर रहे हैं, सो उनका फल आगामी काल में, इस भव में या अन्य भव में मिलेगा।

आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! यदि ऐसे सुअवसर में धर्म धारण नहीं करोगे तो कब करोगे? तुझे अपनी खबर तो है नहीं और पर के द्वारा अपना हित तथा धर्म करना चाहता है, सो यह कैसे होगा? यह तो आत्मबल को हीन करने की, उसे नपुंसक बनाने की बात है। संसार के तथाकथित सयाने और समझदार लोग भी आत्मा को बलहीन करने की बात करते हैं।

आचार्य कहते हैं कि आत्मा क्या है, धर्म क्या है, तथा हित क्या है? समझो। तो अज्ञानी कहता है कि इसमें समझना क्या है, कर्ताभाव से शुभाशुभभाव का जो विपाक उदय में आता है उस समय शुभाशुभभावरूप परिणमित होना सो आत्मा है, इससे अलग कोई आत्मा नहीं है। इसप्रकार इस बोल में अज्ञानी की कर्तृत्व की मान्यता स्पष्ट हो गई है।

जगत में अनंत जीव हैं, उनकी भिन्न-भिन्न मान्यताएँ हैं। यहाँ पर आचार्य अब छठवीं प्रकार की मान्यतावाले जीवों के संबंध में विचार करते हैं।

कोई कहता है कि साता-असाता रूप से व्याप्त जो समस्त तीव्र-मंदतारूप गुण हैं, उनके द्वारा भेदरूप होनेवाला कर्म का अनुभव ही जीव है, क्योंकि सुख-दुःख में अन्य कोई जीव देखने में नहीं आता।

यहाँ पर अज्ञानी कहता है कि हमारी बुद्धि में यह बात ही नहीं जमती कि आत्मा को पुण्य-पाप के फल के अतिरिक्त दूसरा कोई अनुभव भी होता है, अथवा साता-असाता वेदनीय कर्म के निमित्त से आत्मा में जो सुख-दुःख परिणाम होते हैं, उनसे भिन्न भी कोई निर्विकल्प सुख होता है। उसे लगता है कि कभी सुख भोगते हैं तो कभी दुःख भी भोगना पड़ता है। ऐसा सुख कि जिसके बाद कभी दुःख हो ही नहीं - ऐसा बन नहीं सकता।

आत्म-प्रतीतिपूर्वक आत्मा का जो स्वाद आता है, वह निर्विकल्प सुख ही वास्तविक है, यह इंद्रियसुख तो विकल्पात्मक होने से वास्तविक दुःख ही है। अतः आचार्य अज्ञानी को समझाते हैं कि तू अपनी धारणा छोड़, और पुण्य-पाप से भिन्न ज्ञानानंदस्वभावी निज

आत्मतत्त्व का उपभोग कर तो तुझे अनुपम, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होगी। इतना अवश्य है कि जब तक ऐसी शुभाशुभ विकारों की रुचि नहीं हटेगी तब तक वास्तविक सुख की उत्पत्ति नहीं होगी।

कोई अज्ञानी यह मानते हैं कि श्रीखंड की भाँति उभयरूप मिले हुए आत्मा और कर्म—दोनों का संयोग ही जीव है, क्योंकि संपूर्णतया कर्मों से मुक्त कोई जीव दिखाई नहीं देता।

कोई यह मानते हैं कि आत्मा और कर्म एक होकर काम करते हैं, बिना कर्म के आत्मा कार्य नहीं करता और बिना आत्मा के कर्म कार्य नहीं करता, परंतु तत्त्वदृष्टि से यह बात ठीक नहीं है; क्योंकि दो द्रव्य मिलकर कभी एक कार्य को नहीं करते ? यदि दो द्रव्य मिलकर एक कार्य को करें तो एक द्रव्य की सत्ता का नाश हो जायेगा। यद्यपि निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है; तथापि निमित्त निमित्त का कार्य करता है; उपादान उपादान का कार्य करता है। निमित्त उपादान का नहीं; और उपादान निमित्त का नहीं।

जगत में कुछ लोग यह कहते हैं कि आप आत्मा ही आत्मा की बातें करते हैं, सो ठीक है। परंतु क्या यह सच नहीं है कि कार्य के कर्तृत्व में अधिकांश भाग आत्मा का और कुछ भाग कर्म का होता है ? ज्ञानी कहते हैं कि नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं है। कर्म का कोई भाग नहीं; कर्म का शत-प्रतिशत भाग कर्म में है और आत्मा का शत-प्रतिशत भाग आत्मा में है। आत्मा का कर्म में और कर्म का आत्मा में किंचित् मात्र भी भाग नहीं है।

केवलज्ञान होने में कोई वज्र-वृषभ-नाराच संहनन कारण नहीं है। वज्र-वृषभ-नाराच संहनन अपने कारण से है और केवलज्ञान अपने कारण से है ? यह बात अलग है कि जिस जीव के संयोग में वज्र-वृषभ-नाराच संहनन होता है, उस जीव के ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है। परंतु यहाँ निमित्त-नैमित्तिक संबंध का मात्र ज्ञान कराया है, उनका परस्पर कारण-कार्य संबंध नहीं है। आत्मा आकाशादि द्रव्य की भाँति स्वतंत्र, अखंड और पूर्ण चैतन्य सत्ता है, उसका गुण किसी की सहायता से किंचित् मात्र भी प्रगट हो नहीं सकता।

कोई अत्यंत जड़बुद्धि यह मानते हैं कि अर्थक्रिया में समर्थ कर्म का संयोग ही जीव है, क्योंकि जैसे लकड़ी के आठ टुकड़ों के संयोग से भिन्न कोई पलंग नहीं होता; उसीप्रकार कर्म-संयोग से भिन्न कोई जीव देखने में नहीं आता।

कुछ अज्ञानी जीव कुतर्क से यह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि जैसे महुआ, खजूर और अंगूर इत्यादि को सड़ा-गलाकर—एकत्रित करके शराब बनाई जाती है; उसीप्रकार अष्टकर्म के संयोग से आत्मा उत्पन्न होना मानते हैं ? परंतु उन्हें पता नहीं है कि जिसप्रकार आठ लकड़ियों के समूह से तो पलंग बनाया जाता है, परंतु उस पर सोनेवाला पुरुष भिन्न होता है; उसीप्रकार अष्टकर्म का संयोग तो अलग है, परंतु उसमें रहनेवाला आत्मा अलग पदार्थ है। इसप्रकार चैतन्य भगवान महाप्रभु है, वह समस्त कर्मों से पृथक् है। उस पर लक्ष्य करने से अष्ट कर्मों से संबंध छूट जाता है।

आचार्य अत्यंत करुणा से कहते हैं कि ऐसा उत्तम मानव शरीर प्राप्त करके परमात्मस्वरूप आत्मा का परिचय नहीं किया और श्रद्धा नहीं की तो फिर अब कहाँ जाकर पार लगेगा ? किसकी शरण में जायेगा ? कहाँ जायेगा ? तेरे अरण्य-रोदन को कौन सुनेगा ? जब घोर वन में अकेले हिरन पर कोई सिंह आक्रमण कर देता है तब वहाँ कौन उस बेचारे की पुकार सुनता है। इसीप्रकार जब काल तुझे ग्रास बनायेगा तब कौन तेरी पुकार सुनेगा ? उससमय कुटुंब-कबीला और मित्र-मंडली क्या साथ देगी ? बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी काल के ग्रास बन जाते हैं, उससमय उनके सब वैभव पड़े रह जाते हैं। इसलिये सत्-समागम के द्वारा श्रवण-मनन करके पर से आत्मा को भिन्न करने का प्रयत्न कर। व्यर्थ के कुतर्कों से क्या लाभ ?

इसप्रकार आठ ही तरह के नहीं, किंतु अन्य भी अनेक प्रकार के दुर्बुद्धि जीव पर को आत्मा मान रहे हैं। उन्हें परमार्थवादी कभी भी सत्यार्थवादी नहीं मानते हैं। सत्यार्थवादी तो वे हैं जो वास्तविक वस्तुस्वरूप को जानें, पर से भिन्न निज को जानें, मानें और उसी में स्थिर होवें; अन्य कोई भी सत्यार्थवादी नहीं हैं।

जीव-अजीव दोनों अनादिकाल से एकक्षेत्रावगाह संयोगरूप से मिले हुए हैं और अनादिकाल से ही पुद्गल के संयोग से जीव की अनेक विकारसहित अवस्थाएँ हो रही हैं। परमार्थदृष्टि से देखने पर, जीव तो अनेक चैतन्यत्व आदि भावों को नहीं छोड़ता और पुद्गल अपने मूर्तिक, जड़त्व आदि को नहीं छोड़ता। परंतु जो परमार्थ को नहीं जानते वे संयोग से हुये भावों को ही जीव कहते हैं, क्योंकि पुद्गल से भिन्न परमार्थ से जीव का स्वरूप सर्वज्ञ को दिखाई देता है तथा सर्वज्ञ की परंपरानुसार आगम से जाना जा सकता है; इसलिए जिनके मत में

सर्वज्ञ नहीं हैं, वे अपनी बुद्धि से अनेक कल्पनाएँ करते हैं। उनमें से वेदान्ती, मीमांसक, सांख्य, योग, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, चार्वाक आदि मतों के आशय लेकर आठ प्रकार तो प्रगट कहे हैं और अन्य भी अपनी-अपनी बुद्धि से अनेक कल्पनाएँ करके अनेक प्रकार से कहते हैं सो उन्हें कहाँ तक कहा जाये ?

भावार्थ में पंडित श्री जयचंदजी छाबड़ा ने व्यवहार दृष्टि का ज्ञान कराते हुए परमार्थदृष्टि का स्वरूप स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि पुद्गलादि परपदार्थों से भिन्न आत्मा का परमार्थस्वरूप सर्वज्ञ ने देखा है। परंतु वर्तमान में सर्वज्ञ का अभाव होने से सर्वज्ञ की परंपरानुसार आगम से भी जाना जा सकता है। परंतु इसका प्रत्यक्ष से आस्वाद तो स्वानुभव के द्वारा ही हो सकता है।

जिसके मत में सर्वज्ञ नहीं है, वह अपनी बुद्धि से अनेक कल्पनाएँ किया करता है। कोई कहता है कि कभी भी, कहीं भी, और कोई भी न तो सर्वज्ञ था, न है, और न हो सकता है, किंतु ऐसा कहनेवाला तीन लोक और तीन काल को जाने बिना कैसे कह सकता है ? यदि तीन लोक और तीन काल को जाने बिना कहता है तो उसका कहना अप्रमाण है और यदि जानकर कहता है तो वह स्वयं सिद्ध हुआ।

इसप्रकार सर्वज्ञ को नहीं माननेवाले अनेकों मिथ्या मनगढ़ंत बातें करते हैं। कुछ मतवाले सर्वज्ञ को मानते हुए भी वास्तविकरूप से सर्वज्ञ नहीं सिद्ध कर पाते। अत: जिसके मत में वीतरागता और सर्वज्ञता की वास्तविक सिद्धि है, वह ही परम सत्य है।

जिनागम में सर्वज्ञता की अनेक तर्कों द्वारा सिद्धि की है। प्रत्येक आत्मा में सर्वज्ञता प्रगट करने की सामर्थ्य है। भगवान महावीर आदि सभी तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ थे। वर्तमान में विदेहक्षेत्र में सीमंधर परमात्मा आदि भी सर्वज्ञरूप से विराजमान हैं।

जो सर्वज्ञ को यथार्थतया स्वीकार करता है, वह सर्वज्ञता अवश्य प्रगट करेगा और जो सर्वज्ञ को स्वीकार नहीं करते, वे बिना धनी के ढोर समान हैं। अर्थात् जिसप्रकार मालिक के बिना पशुओं की कीमत नहीं होती; उसीप्रकार जो मत सर्वज्ञ के बाहर हैं उनकी कोई कीमत नहीं, उनके वचनों की प्रामाणिकता नहीं है। फिर भी यदि जगत के जीव अपनी बुद्धि से विविध कल्पनायें करें तो वे अपनी मान्यता के लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं, उन्हें कहाँ तक समझायें—ऐसा आचार्य कहते हैं।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

अब 'मुत्तं' शब्द का खुलासा चलता है:—

अमूर्त्त शुद्ध आत्मा से विलक्षण स्पर्श, रस, गंध तथा वर्ण वाली जो वस्तु है, उसे मूर्त्त कहते हैं; और इस मूर्त्तपने को धारण करनेवाला अर्थात् मूर्त्तपने का सद्भाव जिसमें है ऐसा एक पुद्गल द्रव्य ही है। यह जड़ होता है, इसमें ज्ञान नहीं होता। आत्मा मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों को ही जानता है। यही कारण है कि पहले अमूर्त्त आत्मा की बात की और आत्मा से विलक्षण (विपरीत लक्षणवाला) द्रव्य मूर्त्त है, यह कहा। पुद्गल के अलावा पाँचों द्रव्य अमूर्त्त हैं—यह न समझकर अज्ञानी संयोग के कारण आत्मा को मूर्त्त समझता है—इसी बात का खुलासा करते हैं।

जीव अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से मूर्त्त है और शुद्धनिश्चयनय से अमूर्त्त है। तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य तो सभी अपेक्षाओं से अमूर्त्त हैं।

भगवानस्वरूप आत्मा चिदानंदघनस्वभाव का धारक अमूर्त्त है। केवल उसकी पर्याय में विकार है, उस विकार में निमित्त मूर्तिककर्म है, और कर्मों का एकक्षेत्रावगाही संबंध आत्मा से है; यह बताने के लिये असद्भूतव्यवहारनय से आत्मा को मूर्तिक कहा है। परंतु अमूर्त्त आत्मा कदापि कर्मों के संयोग से मूर्तिक नहीं होता। उसकी तो प्रत्येक पर्याय अमूर्त्त ही रहती है, स्पर्शादिरूप नहीं हो जाती। यही कारण है कि असद्भूत कहा।

तथा विकार आत्मा की पर्याय में होता है; त्रिकालस्वभाव में नहीं है। अरे! विकारोत्पत्ति में निमित्तभूत कर्म तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं है। यह अनुपचरित कथन हुआ।

कर्म आत्मा के लिये परपदार्थ होने से कर्म का आश्रय व्यवहार है।

इसप्रकार अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से आत्मा को मूर्तिक कहा है। परंतु आत्मा

मूर्त्त नहीं है, अमूर्त्त ही है; क्योंकि कर्म और आत्मा दोनों ही भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं—यह बताने के लिये असद्भूत कहा। जिससे सिद्ध होता है कि भिन्न कर्मों के कारण आत्मा में विकार नहीं होता है।

कर्म के कारण विकार होता है, जो ऐसा मानते हैं, उन्हें व्यक्त और स्थूल अपनी पर्याय की स्वतंत्रता भी भासित नहीं होती है। इसलिये जो वे ऐसा कहते हैं कि अव्यक्त और त्रिकाली ध्रुवस्वभावी आत्मा की स्वतंत्रत दृष्टि हमें हुई है; उनकी यह मान्यता खोटी है, क्योंकि जिसे पर्याय की स्वतंत्रता भासित नहीं होती उसे ध्रुव आत्मा की या साक्षात् परमात्मा की श्रद्धा न तो होती है और कभी हो भी नहीं सकती।

निश्चयनय और व्यवहारनय का यथार्थ ज्ञान तो धर्मी (सम्यग्दृष्टि जीव) को ही होता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं।

जो पहले तो निश्चयनय से आत्मा को अमूर्त्त जाने, पश्चात् व्यवहारनय से उसे मूर्त्त कहे तो उसका ज्ञान सच्चा होता है। परंतु नयविवक्षा न समझने से आत्मा अमूर्त्त है ऐसा यथार्थ ज्ञान अज्ञानी को नहीं होता। तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल भी अमूर्त्त द्रव्य हैं, यह ज्ञान भी उसे नहीं होता है।

आत्मा को जाने बिना शास्त्र में लिखे अनुसार मात्र धारणरूप ज्ञान यथार्थ नहीं होता है।

आत्मा को व्यवहार से मूर्त्त कहा। इसका अर्थ यह है कि आत्मा के समीपवर्ती जो मूर्त्त कर्म हैं, वे आत्मा में नहीं हैं, यह जतलाने के लिये आत्मा को व्यवहार से मूर्त्त कहा है। इस बात को समझे बिना क्षुल्लक कर्मानंदजी, जो आज अन्य धर्मों को मानते हैं, आत्मा मूर्त्त है—ऐसा मानते हैं। इतना ही नहीं 'तत्त्वार्थसार' का आधार देते हैं और कहते हैं कि आचार्यदेव ने जीव को मूर्त्त कहा है इसलिए आत्मा मूर्त्त है। परंतु उनकी यह बात खोटी है।

अज्ञानदशा में आत्मा के साथ पर का संबंध है, यह बताने के लिये व्यवहारनय से आत्मा को मूर्त्त कहा है; आत्मा मूर्त्त हो नहीं गया है।

अब 'सपदेसं' शब्द की व्याख्या करते हैं:—

लोकाकाश जितने असंख्य प्रदेशों को आत्मा धारण करनेवाला है। आत्मा (जीव), पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये सब मिलकर पंचास्तिकाय कहलाते हैं तथा सप्रदेशी हैं। कालद्रव्य एक से अधिक प्रदेशवाला नहीं होने से अप्रदेशी है। एक प्रदेशवाले

द्रव्य को उपचार से अप्रदेशी कहा जाता है। यह जैन आगम की शैली है।

भगवान आत्मा एकरूप अखंड होकर भी असंख्य प्रदेशी है; उसके असंख्य प्रदेश आत्मा में ही हैं, पुद्गल आदि अन्य द्रव्यों के प्रदेश भी अपने-अपने द्रव्यों में हैं। आत्मा का अस्तित्व आत्मा से है, अन्य द्रव्यों के कारण नहीं है; तथा अन्य द्रव्यों का अस्तित्व भी अपने-अपने द्रव्य के कारण हैं, अन्य किसी द्रव्य के कारण नहीं।

जिसे अपने ज्ञान की पर्याय उग्र करना हो, उत्कृष्ट करना हो, वह अपने में ही ज्ञान-पर्याय को समा दे अर्थात् उपयोग को अपनी आत्मा में ही टिकाये, आत्मा में ही रहे। इसके लिये परपदार्थों की किंचित्मात्र भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अपना आत्मा स्वयं अनंत गुणों का स्वामी है, असंख्यप्रदेशी आत्मा के गुण और पर्याय भी आत्मा के प्रमाण के बराबर हैं।

'एकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानम्' यह कहा। यहाँ एकाग्र होने के लिये पर की आवश्यकता नहीं, आत्मस्वरूप से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक आत्मा असंख्यप्रदेशी है—यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है।

इसप्रकार स्पष्टीकरण हो जाने पर भी वेदांत और जैनों के सिद्धांत में थोड़ा सा अंतर है—ऐसा कोई-कोई विद्वान (पंडित) मानते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। क्योंकि दोनों के वचनों में पूर्व और पश्चिम दिशा के बराबर या जमीन और आसमान जैसा अंतर है। बहुत द्रव्य, बहुत गुण आदि होने पर भी वेदांती एक द्रव्य और एक गुण आदि मानते हैं, यह बात प्रसिद्ध है।

फिर भी अज्ञानी इसमें अनेकांत लगाता है कि निश्चय से जैन और वेदांत एक हैं और व्यवहार से उनमें फर्क (अंतर) है। परंतु उसने अनेकांत को समझा ही कब है।

जैनों को छोड़कर किसी ने भी आत्मा को असंख्यप्रदेशी नहीं माना है, इसलिए भी अन्य मतावलंबियों के साथ जैनों का मेल नहीं बैठता है।

आत्मा तो ज्ञानस्वभावी है, ज्ञेय पदार्थ जितने और जैसे हैं, ज्ञान उनको ज्यों का त्यों जानता है। आत्मा का ज्ञानरूप स्वभाव ही धर्म है और वह आत्मा को छोड़कर अन्यत्र बाहर कहीं भी नहीं जाता है। इसलिए आत्मा को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी धर्म नहीं है और न ही खोजना चाहिए।

आत्मा असंख्यप्रदेशी है, अनंतगुणों का धारक है, ध्रुव परमात्मा है—ऐसी श्रद्धा हो जाने पर धर्म होता है।

अब 'एय' (एक) शब्द का अर्थ कहते हैं:—

द्रव्यार्थिकनय से धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों ही द्रव्य एक-एक हैं, और जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, और कालद्रव्य ये तीनों द्रव्य अनेकानेक हैं। जैसे—जीव अनंत हैं, पुद्गल अनंतानंत हैं और कालाणु असंख्य हैं। इसप्रकार छह द्रव्यों को वास्तविकरूप से जानकर जो अपनी आत्मा का आराधक है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है और आत्मस्वरूप की विराधना करनेवाला त्रसपर्याय की आयु पूर्ण कर नियम से निगोद में जाता है।

स्वतत्त्व की वास्तविक रुचि बिना परपदार्थों की रुचि कम नहीं होती तथा टलती भी नहीं है।

अब 'खेत्त' (क्षेत्र) शब्द का अर्थ समझाते हैं:—

समस्त द्रव्यों को अवगाह देने की सामर्थ्य एक आकाशद्रव्य में ही है, शेष पाँच द्रव्यों में नहीं। आकाश में पाँचों प्रकार के द्रव्य रहते हैं। इसलिए आकाश को क्षेत्र कहते हैं। न्याय से समझ में आनेवाली बात है। क्षेत्र से आकाश विस्तृत है, फिर भी गुणों की अपेक्षा सभी द्रव्यों के समान अनंतगुणोंवाला है, एक पुद्गल परमाणु में अनंत गुण हैं। ज्ञान एक समय में सबको जानता है, चैतन्यस्वभावी आत्मा सबको जाननेवाला है, ऐसा अज्ञानी स्वीकार नहीं करता है।

अब 'किरियाय' शब्द की व्याख्या चलती है :—

एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन अथवा हलन-चलनरूप क्रिया केवल जीव और पुद्गल दो ही द्रव्यों में होती है, शेष द्रव्यों में नहीं।

स्वस्तिक वाला आठ सौ मन का पत्थर जयपुर से यहाँ आया है तो वह अपनी क्रियावती शक्ति से आया है, रेल से नहीं आया, रेल थी इसलिए आया है-ऐसा भी नहीं है। यदि दूसरों के कारण आये तो उसकी क्रियावती शक्ति मानने में नहीं आती और क्रियावान वस्तुएँ ही सिद्ध नहीं होतीं और ज्ञान खोटा हो जाता है। मिथ्याज्ञान से आत्मा जानने में नहीं आता है, इसलिए वह आत्मा को भी नहीं मानता है। [क्रमशः]

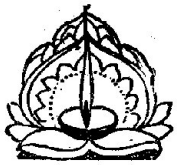

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- संसार की थकावट लगाने का उपाय क्या है ?

उत्तर- संसार में शुभाशुभ भाव हैं, वे सब दु:खरूप हैं, उनके फल में चतुर्गति मिलती है, वहाँ अनेक प्रकार के दु:ख और आकुलतायें हैं—ऐसा अपने को अंदर से लगना चाहिए। शुभाशुभ भाव दु:खरूप ही हैं—ऐसा लगे तो संसार की थकावट लगे।

प्रश्न- धारणाज्ञान में यथार्थ जाने तो सम्यक्सन्मुखता कही जाए या नहीं ?

उत्तर- धारणाज्ञान में दृढ़संस्कार अपूर्व रीति से डाले, पहले कभी नहीं डाले हों—ऐसे अपूर्व रीति से संस्कार डाले जावें तो सम्यक्सन्मुखता कही जाए।

प्रश्न- मुक्ति और संसार में अंतर नहीं है-ऐसा कौन पुरुष कहते हैं ? और किस नय से कहते हैं ?

उत्तर- शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति और संसार में अंतर नहीं है। अहा हा! कहाँ पूर्णानंद की प्रकटतारूप मुक्तदशा और कहाँ अनंत दु:खमय संसारपर्याय! तथापि उस मुक्ति और संसार में अंतर नहीं है-ऐसा शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं, क्योंकि संसार भी पर्याय है और मुक्ति भी पर्याय है। यह पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं है, इस अपेक्षा से मुक्ति और संसार में अंतर नहीं है—ऐसा शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं—शुद्धतत्त्व के अनुभवी पुरुष कहते हैं। नियमसार गाथा ५० में कहा है कि शुद्धनिश्चय के बल से उदयभाव तो हेय है ही, किंतु उपशमादिभाव की निर्मल पर्याय भी हेय है। शुद्धनिश्चय के बल से चारों भाव-विभावभाव-हेय हैं—ऐसा कहा।

प्रश्न- क्या जीव का अजीव के साथ कारणकार्यभाव सिद्ध नहीं होता ?

उत्तर- नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य का परिणाम अपने से होता है, उसे दूसरा द्रव्य नहीं कर

सकता। जीव अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, उसे अजीव के साथ कारणकार्यभाव सिद्ध नहीं होता। होठ चलते हैं, वाणी निकलती है, उनका कर्ता जीव है-ऐसा सिद्ध नहीं होता। दाल, भात, शाक होता है—उसे जीव नहीं कर सकता। रोटी का टुकड़ा होता है, उसे जीव नहीं कर सकता। शरीर के अवयवों का हलन-चलन होता है, उसका कर्ता जीव है—ऐसा सिद्ध नहीं होता। हाँ, उन अजीव के सभी कार्यों का कर्ता पुद्गल द्रव्य है—ऐसा सिद्ध होता है। अहा हा! सूक्ष्म बात है भाई! वीतरागकथित वस्तु को समझे तो संसार से पार हो जाए - ऐसी बात है।

प्रश्न- पदार्थों की स्वतंत्रता समझने से क्या लाभ है ?

उत्तर- पदार्थों की स्वतंत्रता समझने से अपने परिणाम का कर्ता स्वयं है-अन्य नहीं है; इसप्रकार समझने से पर से विमुख होकर अपने में परिणाम लगाकर आत्मा का अनुभव करना—यह लाभ है। अपना स्वभाव ज्ञातादृष्टा है—ऐसा जानकर मात्र देखनेवाला-जाननेवाला बना रहे तो चौरासी के अवतार में भटकना मिटे और मुक्ति प्राप्त हो—यह लाभ है।

सोनगढ़ समाचार

पूज्य गुरुदेवश्री की छत्रछाया में 'वचनामृत भवन' का शिलान्यास

दिनांक १२-११-१९८० कार्तिक शुक्ला पंचमी, बुधवार को '**वचनामृत भवन**' का शिलान्यास श्री कामाणी परिवार द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के सान्निध्य में संपन्न हो रहा है। उक्त कार्यक्रम की पत्रिका दिनांक १७-१०-८० को लिखी जाने का मुहूर्त है। पत्रिका प्रकाशित होने पर सभी जगह भेजी जावेंगी। समारोह के विस्तृत समाचार अगले अंक में दिये जावेंगे।

पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। अभी बीच में कुछ दिनों उनका स्वास्थ्य खराब रहा, अब ठीक है; प्रवचन अब शीघ्र ही प्रारंभ होंगे।

दशलक्षण महापर्व के अवसर पर

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभाव से भारत के कोने-कोने में धर्म का डंका बजा

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ की ओर से दशलक्षण महापर्व के अवसर पर १३८ विद्वान प्रवचनार्थ भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में भेजे गए थे। स्थान-स्थान से निरंतर समाचार आ रहे हैं, जिनमें उनके द्वारा हुई धर्मप्रभावना की चर्चा के साथ-साथ सारे देश में एक आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर देने के लिए पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा व्यक्त की गई है तथा साथ ही स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के प्रति आभार व्यक्त किया गया है। स्थानाभाव के कारण प्राप्त विस्तृत समाचारों को देना संभव नहीं है, फिर भी कतिपय प्रमुख नगरों के संक्षिप्त समाचार यहाँ दिये जा रहे हैं। —संपादक

फिरोजाबाद (उ०प्र०) - समाज के विशेष आग्रह पर आध्यात्मिक प्रवक्ता डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल यहाँ पधारे। स्थानीय चंद्रप्रभ दि० जैन मंदिर में मध्याह्न क्रमबद्धपर्याय एवं रात्रि को धर्म के दशलक्षण पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए, जिनसे समाज को अभूतपूर्व लाभ मिला। स्थानीय समाज के अतिरिक्त एत्मादपुर, इटावा, जसवंतनगर, मेरठ, एटा आदि स्थानों से भी सैकड़ों की संख्या में नर-नारियों ने उपस्थित होकर अध्यात्मरस का मंत्र-मुग्ध होकर रसास्वादन किया। आपके साथ पधारे महाविद्यालय के छात्र पंडित कमलेशकुमारजी शास्त्री ने तत्त्वार्थसूत्र का विवेचन सरल भाषा में किया। विपिनकुमारजी, अध्यात्मप्रकाशजी एवं कु० अध्यात्मप्रभा ने शहर के विभिन्न स्थानों पर बच्चों की कक्षाऐं आयोजित कीं। श्रीमती

गुणमाला भारिल्ल ने छहढाला पर महिलाओं की कक्षा लगाई। डॉ० भारिल्लजी की प्रेरणा से अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गई, जिसका उद्घाटन स्थानीय विदुषी श्रीमती चंद्राकुमारी जैन ने किया।

इस अवसर पर लगभग पाँच हजार का सत्साहित्य बिका एवं आत्मधर्म तथा जैनधर्म प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाए गए। अंत में क्षमावाणी के अवसर पर डॉ० भारिल्लजी एवं समागत विद्वत्जनों का भाव-भीना अभिनंदन किया गया तथा आपसे पुन: पधारने का आग्रह किया गया।

—सूरजभान जैन

रायपुर (म०प्र०) - समाज के विशेष आग्रह पर पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा एवं पंडित बाबूभाई नाथालाल फतेपुर पधारे। पंडित ज्ञानचंदजी के छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर बड़े ही रोचक तात्त्विक प्रवचन चलते थे। पंडित बाबूभाई ने तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन किये एवं बच्चों की कक्षाऐं लीं। साथ ही टोडरमल महाविद्यालय के छात्र पंडित अशोककुमारजी ने भी बच्चों की कक्षाऐं लीं। प्रात: ५.३० से ६.३० तक पंडित ज्ञानचंदजी की तत्त्वचर्चा एवं रात्रि को शंका समाधान होता था। आपके प्रवचन सुनने के लिए स्थानीय समाज के अतिरिक्त दुर्ग, भिलाई, खैरागढ़, राजनांदगाँव, तवापारा, राजिम, विलासपुर, धनवंतरी, जगदलपुर आदि अनेक स्थानों से लोग पधारे थे। बच्चों की परीक्षा ली गई जिसमें सभी छात्र उत्तीर्ण हुए, सभी छात्रों को पुरस्कार दिया गया।

इस अवसर पर लगभग ३००० रुपये का सत्साहित्य बिका एवं आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को २१,१०३ रुपये की धनराशि प्राप्त हुई तथा युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गयी।

दिनांक २२-९-८० को आकाशवाणी द्वारा पंडित ज्ञानचंदजी का प्रवचन टेप किया गया जिसे २३-९-८० को प्रसारित किया गया। दूरदर्शन केंद्र द्वारा भी आपके प्रवचन की फिल्म ली गई जो शीघ्र प्रसारित की जाएगी। अंत में समाज ने आप दोनों विद्वानों का अभिनंदन किया। वहाँ से लौटते हुए आपके प्रवचन भिलाई एवं खैरागढ़ में आयोजित किये गये।

— अरविंद बटालिया

करहल (उ०प्र०) - टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के प्राचार्य पंडित रतनचंदजी भारिल्ल एवं प्रतिभाशाली छात्र श्री कैलाशचंदजी एवं अशोककुमारजी पधारे। प्रतिदिन तीनों

समय क्रमबद्धपर्याय, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशलक्षण धर्म पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। श्रीमती कमला भारिल्ल ने महिलाओं की तथा जैन इंटर कॉलेज की छात्राओं की कक्षाऐं लीं। श्री कैलाशचंदजी एवं अशोककुमारजी ने बच्चों की कक्षाऐं चलाईं। अंत में सभी बच्चों की परीक्षाऐं हुईं, परीक्षाफल शत-प्रतिशत रहा। इस अवसर पर एक हजार रुपये का सत्साहित्य बिका तथा जैनपथ प्रदर्शक एवं आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये। युवा फैडरेशन की नवीन शाखा भी गठित की गयी। जैन इंटर कॉलेज में पंडितजी का अहिंसा पर मार्मिक व्याख्यान हुआ। समाज की ओर से आपको अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया। — रविकांत जैन

मेरठ (उ०प्र०) - आगरा से पंडित नेमीचंदजी पाटनी पधारे। स्थानीय दि० जैन पंचायती मंदिर तीरगरान में दोनों समय मोक्षमार्गप्रकाश तथा दशधर्म पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। दोपहर में तत्त्वचर्चा भी चलती थी। आपके साथ पधारे टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र श्री योगेशकुमारजी एवं श्री महेन्द्रकुमारजी द्वारा विभिन्न स्थानों पर बच्चों की कक्षाऐं चलायीं गयीं। बच्चों ने पाठमालाओं के आधार पर रोचक संवाद प्रस्तुत किये। — हुकमचंद जैन

जयपुर (राज०) - सिवनी से पंडित उत्तमचंदजी भारिल्ल पधारे। यहाँ आपके दि० जैन दीवानजी का बड़ा मंदिर, तेरापंथी दि० जैन बड़ा मंदिर, दि० जैन मंदिर आदर्शनगर एवं टोडरमल स्मारक भवन में दशधर्मों पर सारगर्भित प्रवचन हुए। सिवाड़ बाकलीवालान मंदिर में भी आपका एक प्रवचन हुआ। समाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। — कपूरचंद अजमेरा

बम्बई (महा०) - सीमंधर जिनालय में दोनों समय पंडित अभयकुमारजी शास्त्री जयपुर के, दादर में प्रात: पंडित चिमनभाईजी ठाकरसी के तथा सायं श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल के, घाटकोपर में तीनों समय पंडित रमेशकुमारजी ललितपुर के तथा मलाड़ में पंडित हिम्मतभाई डगली के प्रवचन चलते थे। इसप्रकार इस वर्ष सभी मंदिरों में अच्छी धर्मप्रभावना रही। पंडित अभयकुमारजी के एक-एक प्रवचन दादर, घाटकोपर एवं मलाड़ में भी हुए। इस अवसर पर साहित्य विक्रय के साथ-साथ २५ पाठशालाओं के लिए वार्षिक अनुदान की स्वीकृति प्राप्त हुई। युवा फैडरेशन के माध्यम से अष्टाह्निका पर्व पर शिक्षण-शिविर लगाने का तय किया गया।

छिन्दवाड़ा (म०प्र०) - कोथली से पंडित केशरीचंदजी 'धवल' पधारे। आपके

तात्त्विक प्रवचनों से समाज में महती धर्म प्रभावना हुई। युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई। इस अवसर पर १४००) रुपये का साहित्य बिका तथा आत्मधर्म के २५ ग्राहक बने। एक दिन के लिये पंडित कपूरचंदजी 'भायजी' एवं डॉ० प्रियंकरजी भी पधारे। — अशोक जैन

नागपुर (महा०) - डॉ० प्रियंकरजी के प्रतिदिन दोनों समय दशलक्षण धर्म एवं तत्त्वार्थसूत्र पर प्रवचन हुए। समाज में अच्छी धर्मप्रभावना हुई। शुक्रवारी में एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गई। —कुंदनलाल मोदी

बयाना (राज०) - कोटा से पंडित रामकिशोरजी पधारे। दोनों समय छहढाला एवं दशलक्षण धर्म पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए। दोपहर में शंका-समाधान होता था। यहाँ १४ अक्टूबर से १६ अक्टूबर तक जैन रथोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। —रूपेन्द्रकुमार जैन

भीलवाड़ा (राज०) - अशोकनगर से पंडित हरकचंदजी बिलाला पधारे। पाप-पुण्य, निश्चय-व्यवहार, कर्ता-कर्म आदि विषयों पर आपके प्रवचन हुए। छोटे-छोटे बच्चों द्वारा अनेक प्रभावशाली कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। अंत में आपको अभिनंदन-पत्र भी भेंट किया गया। — पी० के० अजमेरा

बड़वाह (म०प्र०) - कुरावड़ से पंडित रंगलालजी पधारे। छहढाला एवं लघु सिद्धांत प्रवेशिका एवं दशलक्षण धर्म पर आपके प्रवचन हुए, जिससे समाज ने लाभ उठाया। —डॉ० महेन्द्र जैन

महीदपुर (म०प्र०) - पिड़ावा निवासी पंडित तेजमलजी पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार एवं दशधर्मों पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। दशलक्षण मंडल विधान-पूजन एवं सहस्त्रनाम का विशेष आयोजन किया गया। —विनय सोगानी

बंडाबेलई (म०प्र०) - मौ से पंडित शांतिकुमारजी पधारे। तीनों समय समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, लघु सिद्धांत प्रवेशिका एवं दशधर्मों पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। युवा फैडरेशन के सदस्यों ने रोचक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। — कपूरचंद भायजी

अजमेर (राज०) - करेली से पंडित कपूरचंदजी पधारे। स्थानीय पंचायती धड़ा गोधों की नसियां में प्रतिदिन तीनों समय आपके मार्मिक प्रवचन होते थे। इस अवसर पर

५००) रुपए का सत्साहित्य बिका तथा अनेक आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक बनाये गये। —सुजानमल जैन

कुरावड़ (राज०) - फतेपुर मोटा से पंडित चन्दूलाल कोदरलालजी पधारे। समयसार, तत्त्वार्थसूत्र एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर तीनों समय हुए आपके प्रवचनों से समाज को लाभ मिला। २४ सितम्बर को पंडित ज्ञानचंदजी करेली वाले पधारे। उनके भी तीन प्रवचन हुए। — भंवरलाल जैन

जैसीनगर (म०प्र०) - पंडित कोमलचंदजी के तत्त्वार्थसूत्र, दशलक्षण धर्म एवं छहढाला का कल्याणकारी प्रवचन हुए। समाज को अपूर्व लाभ मिला। — पदमचंद बजाज

गुना (म०प्र०) - टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित प्रदीपकुमारजी झांझरी पधारे। दोनों समय समयसार एवं दशलक्षण धर्म पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा की ओर से प्रतिदिन सामूहिक पूजन एवं जिनेन्द्र भक्ति के अतिरिक्त भजन, अंताक्षरी एवं वाद-विवाद प्रतियोगितायें आयोजित की गयीं। दिनांक २४-९-८० को युवा फैडरेशन का जिलास्तरीय सम्मेलन भी आयोजित किया गया। — कमल जैन

करेली (म०प्र०) - टोडरमल महाविद्यालय के छात्र पंडित सुदीपकुमारजी शास्त्री पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला एवं दशलक्षण धर्म पर आपके तात्विक प्रवचन हुए। वीतराग-विज्ञान पाठशाला एवं युवा फैडरेशन की शाखा स्थापित की गई। — सुनीता जैन

बकस्वाहा (म०प्र०) - टोडरमल महाविद्यालय के छात्र पंडित प्रेमचंदजी शास्त्री पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला एवं दशलक्षण धर्म पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। इस अवसर पर २०० रुपए का साहित्य बिका एवं आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने। — भगवानदास

इंदौर (म०प्र०) -मलकापुर निवासी पंडित नेमीचंदजी सर्राफ पधारे। आपके प्रवचन समाज ने मंत्रमुग्ध होकर सुने। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। — सागरमल जैन

खनियाधाना (म०प्र०) - भोपाल से ब्रह्मचारी हेमराजजी पधारे। तीनों समय समयसार, मोक्षशास्त्र तथा दशलक्षण धर्म पर आपके हृदयग्राही प्रवचन हुए। — शिखरचंद जैन

सनावद (म०प्र०) - विदिशा निवासी पंडित नंदकिशोरजी गोयल पधारे। तीनों समय आपके अत्यंत प्रभावी प्रवचन होते थे। युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में भक्ति आदि के नियमित कार्यक्रम चलते थे। दो प्रवचन पंडित रंगलालजी के भी हुए। — सुरेश जैन

फुटेरा कलां (म०प्र०) - अशोकनगर से पंडित मगनलालजी पधारे। तीनों समय हुए आपके तात्विक प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। आत्मधर्म के २० तथा जैनपथ प्रदर्शक के ९ ग्राहक बने।

नागदा (म०प्र०) - लोहारदा से पंडित छगनलालजी पहाड़िया पधारे। चारों समय आपके प्रवचन होते थे। भक्तामर मंडल विधान एवं क्षमावाणी के कार्यक्रम भी संपन्न हुए।

— ज्ञानचंद जैन

खंडवा (म०प्र०) - रखियाल से पंडित रमणलाल माणिकलाल शाह पधारे। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गई। — जुगमंदरलाल जैन

शिकोहाबाद (उ०प्र०) - मुनाई निवासी पंडित मणिभाई पधारे। नियमसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला तथा तत्त्वार्थसूत्र पर आपके प्रवचन हुए। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने। — महावीरप्रसाद जैन

बरायठा (म०प्र०) - पंडित विजयकुमारजी शास्त्री के मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशलक्षणधर्म पर रोचक प्रवचन हुए। — महेन्द्रकुमार

लोहारदा (म०प्र०) - उदयपुर से पंडित उग्रसेनजी बंडी पधारे। चारों समय आपके मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र, जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा दशधर्मों पर प्रवचन हुए। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। स्थानीय मुमुक्षु मंडल द्वारा १२५१) रुपये 'हिन्दी प्रवचन रत्नाकर' के प्रकाशन हेतु दिए गए। —मानकचंद पाटोदी

बारां (राज०) - जयपुर से पंडित हेमचंदजी पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने।

— हजारीलाल बज

पथरिया (उ०प्र०) - बरायठा से ब्रह्मचारी बाबूलालजी पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशलक्षण धर्म पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए। समाज को अच्छा लाभ मला। जैनपथ प्रदर्शक एवं आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने। — पूरनचंद

ऐत्मादपुर (म०प्र०) - दिल्ली-शाहदरा से पंडित लक्ष्मीचंदजी पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, मोक्षशास्त्र तथा दशलक्षण धर्म पर हुए आपके प्रवचनों से समाज में जागृति हुई। क्षमावाणी भी मनायी गयी। — अभयकुमार जैन

रतलाम (म०प्र०) - गुना से पंडित मिश्रीलालजी चौधरी पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, मोक्षशास्त्र एवं दशधर्मों पर आपके हृदयग्राही प्रवचन हुए।

— मोहनलाल छाबड़ा

चंदेरी (म०प्र०) - मौ से पंडित चिंतामणिजी पधारे। तीनों समय हुए आपके तात्विक प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने।

— गुलाबचंद जैन

पिड़ावा (राज०) - जयपुर से प्रो० मानमलजी पधारे। तीनों समय सहस्त्रनाम, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्मों पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। —नेमीचंद जैन

झालावाड़ (राज०) - टोडरमल महाविद्यालय के छात्र पंडित शिखरचंदजी पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशलक्षण धर्म पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए। बच्चों की कक्षा भी ली गई। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने तथा सत्साहित्य विक्रय हुआ।

बीड़ (म०प्र०) - टोडरमल महाविद्यालय के छात्र पंडित विनोदकुमारजी पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशलक्षण धर्म पर आपके प्रभावी प्रवचन हुए। सायंकाल बच्चों की कक्षा लगायी गयी। युवा फैडरेशन की नवीन शाखा भी गठित की गई। — चांदमल जैन

सेलू (महा०) - कन्नड़ से पंडित नेमीचंद पाटनी पधारे। रत्नकरण्ड श्रावकाचार, छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्म पर हुए आपके प्रवचनों से समाज को लाभ मिला।

— ताराचंद काला

शहपुरा-भिटौनी (म०प्र०) - टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित राकेशकुमारजी पधारे। आपके समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्म पर तात्विक प्रवचन हुए। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये।

— डॉ० रतनचंद

विदिशा (म०प्र०) - इंदौर से पंडित दीपचंदजी एवं छिंदवाड़ा से पंडित

प्रबोधचंदजी एडवोकेट पधारे, जिनके प्रवचनों का आयोजन बड़े मंदिर एवं माधोगंज स्थित मंदिर में किया गया। युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। संस्था द्वारा प्रकाशित 'अध्यात्म भजन संग्रह' का विमोचन पंडित प्रबोधचंदजी की अध्यक्षता में श्री दीपचंदजी द्वारा किया गया।

आगरा (उ०प्र०) - अलीगंज से पंडित गंभीरचंदजी वैद्य एवं इंदौर से पंडित प्रकाशचंदजी पाण्ड्या पधारे। नाई की मंडी, ताजगंज एवं मोतीकटरा में आपके तात्त्विक प्रवचन हुए जिससे समाज को अपूर्व लाभ मिला। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। **— पदमचंद सर्राफ**

फतेहपुर मोटा (गुज०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के अध्यक्ष पंडित जतीशचंदजी शास्त्री पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार तथा दशलक्षण धर्म पर आपके तीनों समय अत्यंत मार्मिक प्रवचन हुए। पंडित प्राणलालजी कामदार के भी प्रवचन आयोजित किये गये। पंडित जतीशचंदजी की अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बने। **—बाबूभाई मेहता**

सहारनपुर (उ०प्र) - ग्वालियर से पंडित धन्नालालजी पधारे। लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका, समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशलक्षण धर्म पर आपके प्रभावी प्रवचन हुए। इस अवसर पर आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने, साहित्य भी खूब बिका तथा कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को ४,०२७) रुपये नगद प्राप्त हुए।— **अभिनंदनकुमार जैन**

उज्जैन (म०प्र०) - पंडित महेन्द्रकुमारजी बरायठा वालों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। इस अवसर पर अनेक प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। डॉ० हरिन्द्रभूषणजी की अध्यक्षता में संगोष्ठी भी संपन्न हुई। **— अनिल जैन**

तलोद (गुज०) - श्री टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित कैलाशचंदजी का समागम प्राप्त हुआ। तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशलक्षण धर्म पर हृदयग्राही प्रवचन हुए। युवा फैडरेशन के अनेक सदस्यों ने नियमित स्वाध्याय करने का संकल्प लिया। **— ताराचंद गाँधी**

मुरार-ग्वालियर (म०प्र०) - सोनगढ़ से पंडित संतोषकुमारजी पधारे। तीनों समय

आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। आत्मधर्म के २० तथा जैनपथ प्रदर्शक के ५ ग्राहक बने।
— विनोद जैन

लकड़वास (राज०) - सेमारी से पंडित डूंगरमलजी पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला तथा दशलक्षण धर्म पर आपके प्रवचन हुए एवं जैन सिद्धांत प्रवेशिका की कक्षा चलाई गई।

धार (म०प्र०) - करेली से पंडित पन्नालालजी पधारे। आपके प्रवचनों से समाज में अच्छी धर्मप्रभावना हुई। बच्चों की क्लासें लगायी गयीं तथा परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया गया। आपकी प्रेरणा से पाठशाला खोलने का निर्णय लिया गया। —सुभाष जैन

मेहसाणा (गुज०) - बम्बई से पंडित चंदूलालजी पधारे। छहढाला एवं दशधर्म पर आपके तात्विक प्रवचन हुए जिनको समाज ने मंत्रमुग्ध होकर सुना। — भाईलाल ईश्वरलाल शाह

दाहोद (गुज०) - बड़ौदा निवासी पंडित पूनमचंद माणिकचंदजी पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशलक्षण धर्म पर आपके तात्त्विक प्रवचनों को समाज ने मंत्रमुग्ध होकर सुना।

धौरा (म०प्र०) - ब्रह्मचारी नित्यानंदजी के नियमसार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्म पर प्रवचन हुए। तेरह दीप विधान का भी आयोजन किया गया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। — हेमचंद जैन

सेमारी (राज०) - अशोकनगर से पंडित कैलाशचंदजी पधारे। दिन में पाँच घंटे प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा होने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। — भंवरलाल जैन

आरोन (म०प्र०) - बीना से पंडित बाबूलालजी पधारे। आपके प्रवचनों से समाज काफी प्रभावित हुई। दोपहर में पंडित मोतीलालजी की लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका पर कक्षा चलती थी। दो दिन के लिए युवा फैडरेशन के शिक्षासचिव पंडित प्रदीपकुमारजी झांझरी भी पधारे। उनके प्रवचनों को समाज ने मंत्रमुग्ध होकर सुना। आत्मधर्म एवं जैनपथ के प्रदर्शक अनेक ग्राहक बने। — रतनकुमार जैन

भिण्ड (म०प्र०) - मंदसौर से पंडित प्रह्लादजी पधारे। समयसार, मोक्षशास्त्र तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए जिससे समाज को अपूर्व लाभ मिला। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। — इंद्रसेन बजाज

केसली (म०प्र०) - ब्रह्मचारी आत्मानंदजी के पधारने से समाज में अच्छी जागृति हुई। आपके तात्विक प्रवचनों से समाज को धर्मलाभ मिला। — गोकुलचंद सिंघई

अ० भा० तारण-तरण जैन युवा परिषद् के अनुरोध पर पंडित जयकुमारजी पर्यूषण पर्व के उपरांत पधारे। आपके ९ प्रवचन नगर के विभिन्न मंदिरों में हुए। तारण-तरण चैत्यालय में आपने बच्चों की कक्षाऐं भी लीं। — विद्यानंद जैन

मुंगावली (म०प्र) - बड़ौत से पंडित धर्मदासजी पधारे। प्रतिदिन चारों समय हुए आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुई। — स्वदेश जैन

बूंदी (राज०) - उदयपुर से पंडित मांगीलालजी पधारे। जैनदर्शन के विभिन्न पहलुओं पर आपके प्रभावशाली प्रवचन हुए। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। श्री विमलचंदजी पाटनी ने १०० जैन परिवारों में समयसार ग्रंथ पहुँचाने का संकल्प लिया। —पूर्णचंद

छबड़ा (राज०) - वैद्य पंडित निर्मलकुमारजी चौधरी के दसों दिन दशधर्म पर आध्यात्मिक प्रवचन हुए। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा रोचक संवाद प्रस्तुत किये गये।

इटारसी (म०प्र०) - विदिशा से पंडित शिखरचंदजी पधारे। आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। आत्मधर्म के ३१ व जैनपथ प्रदर्शक के ६ ग्राहक बने। युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गई। — राजधर जैन

उस्मानाबाद (महा०) - बसमतनगर से श्री दीपंतजी लोखंडे पधारे। आपके प्रवचनों से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई।

जसवंतनगर (उ०प्र०) - श्री टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित श्रेयांसकुमारजी पधारे। समयसार एवं दशलक्षण धर्म पर आपके प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक भी बने।

जबेरा (म०प्र०) - अशोकनगर से श्री लालारामजी 'मधुप' एडवोकेट पधारे। तीनों समय हुए प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। — उदय जैन

उदयपुर (राज०) - करेली से पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। आपके तात्त्विक प्रवचनों से

समाज लाभान्वित हुई। वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों ने रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

— ऋषभकुमार जैन

कोटा (राज०) - उज्जैन से पंडित विमलकुमारजी झांझरी पधारे। दोनों समय प्रवचन एवं दोपहर में शंका-समाधान होता था। इस अवसर पर लगभग ६०००) रुपये का साहित्य बिका तथा आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये।

इंदौर (म०प्र०) - स्थानीय नेमीनगर में बेगमगंज निवासी पंडित कस्तूरचंदजी पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशधर्मों पर सरल शैली में आपके प्रवचन हुए। इस अवसर पर आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने।

— गिरधरलाल जैन

शिवपुरी (म०प्र०) - विदिशा से पंडित लालजीरामजी पधारे। तीनों समय तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार तथा रत्नकरंडश्रावकाचार पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। लगभग एक हजार रुपये का सत्साहित्य बिका तथा आत्मधर्म और जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। — नेमीचंद गोंदवाले

सीकर (राज०) - श्री टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित राजकुमारजी शास्त्री पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशलक्षणधर्म पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। आत्मधर्म के १० ग्राहक बने तथा ७०० रुपए का सत्साहित्य बिका। — प्रभुदयाल दीवान

अहमदाबाद (गुज०) - स्थानीय नवरंगपुरा में दहेगाँव से श्री हीराभाई भीखाभाई पधारे। दोनों समय आपके तात्विक प्रवचन हुए जिससे समाज में अच्छी धर्मप्रभावना हुई। इस अवसर पर एक हजार रुपये से भी अधिक का सत्साहित्य बिका। — रतीभाई केशवलाल गांधी

नोट - भिंडर, रामटेक, बार्शी, हिन्दूपुर, गंजबासौदा, गोरमी, जाम्बुड़ी, वाशीम, राजकोट, छतरपुर, मंदसौर, पिंडरई, जावरा, राधौगढ़, हिम्मतनगर, मलकापुर, मौ तथा केकड़ी आदि के समाचार विलंब से प्राप्त होने एवं स्थानाभाव के कारण प्रकाशित नहीं हो सके हैं।

पूज्यश्री कानजीस्वामी के चित्र का अनावरण

.....मैं आज जो कुछ भी हूँ, पूज्य स्वामीजी की कृपा का ही फल हूँ। — डॉ० भारिल्ल

फिरोजाबाद (उ०प्र०) - दिनांक २८-९-८० को वर्णी जयंती के अवसर पर ७.५० फुट ऊँचे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के भव्य तैलचित्र का अनावरण करते हुए डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने स्वामीजी द्वारा देश-विदेशों में हुई अभूतपूर्व धर्मप्रभावना की विस्तृत चर्चा करते हुए उन्हें वर्तमान पीढ़ी का अद्‌भुत व्यक्तित्व का धनी, महापुरुष निरूपित किया। आपने कहा कि मैं आज जो कुछ भी हूँ, पूज्य स्वामीजी की कृपा का ही फल हूँ। श्री नेमीचंदजी पाटनी ने भी गुरुदेवश्री के संबंध में अपने उद्‌गार व्यक्त किये।

ज्ञातव्य है कि सेठ छदामीलाल दि० जैन ट्रस्ट द्वारा निर्मित 'जैननगर' के विशाल प्रांगण में स्थित श्री कानजीस्वामी पुस्तकालय के भव्य भवन में इस तैलचित्र का निर्माण ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री विमलकुमार जैन ने कराया है।

इस अवसर पर यहाँ एक विशाल मेला लगता है। इसी मेले के प्रसंग पर लगभग २० हजार के जनसमुदाय की उपस्थिति में इस चित्र का अनावरण समारोह संपन्न हुआ। उपस्थित जनसमुदाय ने पूज्य स्वामीजी के कार्यकलापों का परिचय प्राप्त कर प्रसन्नता व्यक्त की। **— सूरजभान जैन**

भेंट में मिलने वाली पुस्तक प्राप्त करने का उपाय

— नीचे छपा भेंट-कूपन भरकर उसे निर्देशित स्थान से काटकर भेजें।

— कूपन के पीछे आपका पता चिपका है, कृपया उसे नष्ट न करें, क्योंकि उसी पते को देखकर भेंट की पुस्तक भेजी जावेगी। यह व्यवस्था इस दृष्टि से की गई है कि आपके नाम की पुस्तक कोई दूसरा व्यक्ति न ले सके।

— आप अपना कूपन अपने यहाँ के मुमुक्षु-मंडल के प्रमुख के पास भी जमा करा सकते हैं। हमें मुमुक्षु-मंडलों के माध्यम से जितने भी कूपन प्राप्त होंगे हम उन सबकी पुस्तकें मुमुक्षु-मंडल को भेज देंगे। इसप्रकार आप अपनी पुस्तक आपके यहाँ के मुमुक्षु-मंडल के माध्यम से भी प्राप्त कर सकते हैं।

— मुमुक्षु-मंडल के प्रमुख जितने भी कूपन एकत्रित करें उनके नाम व ग्राहक नंबर नोट करके रिकार्ड में रख लें तथा पुस्तक देते समय प्राप्तकर्ता के हस्ताक्षर करा लें। सभी एकत्रित कूपन आत्मधर्म कार्यालय, जयपुर को रजिस्टर्ड डाक से ही भेजें।

— आपका भेजा हुआ कूपन जयपुर कार्यालय को प्राप्त होने पर पुस्तक बुक-पोस्ट द्वारा आपको भेजी जावेगी। यदि आप सुरक्षा की दृष्टि से पुस्तक रजिस्टर्ड डाक से मंगवाना चाहें तो कृपया रजिस्ट्री खर्च के २ रुपये ७५ पैसे मनिआर्डर द्वारा भेजें तथा मनिआर्डर पर अपना ग्राहक नंबर, पता तथा 'भेंट की पुस्तक के लिए' अवश्य लिखें।

— यह कूपन ३१ दिसम्बर, १९८० तक ही स्वीकार किया जा सकेगा।

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

समयसार	१४-००
मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	७-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
वृहद् द्रव्यसंग्रह	८-००
समयसार नाटक	७-५०
द्रव्यदृष्टिप्रकाश भाग ३	४-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	७-००
समयसार प्रवचन भाग ३	७-००
समयसार प्रवचन भाग ४	८-००
पुरुषार्थसिद्धयुपाय	५-००
धर्म की क्रिया	२-००
श्रावकधर्म प्रकाश	४-००
द्रव्यसंग्रह	१-५०
प्रवचन परमागम	२-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-५०
जैनतत्त्व मीमांसा	६-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
वीतराग-विज्ञान भाग ३	१-००
मुक्ति का मार्ग	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	०-६०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-८५
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-४०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-४०
A Short Reader to Jain Doctrines	०-७५
Tirthankar Bhagwan Mahavira	०-४०
Know Thyself	०-४०
मोक्षमार्गप्रकाशक	६-००
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	११-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ ?	१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
सत्य की खोज (भाग १)	२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — साधारण :	२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण — साधारण :	४-००
धर्म के दशलक्षण — सजिल्द :	५-००
क्रमबद्धपर्याय — साधारण :	२-५०
क्रमबद्धपर्याय — सजिल्द :	३-५०
क्रमबद्धपर्याय — प्लास्टिक कवर :	४-५०

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४